गिजुभाई-ग्रन्थमाला-5

माँ-बापों की माथापच्ची

गिजुभाई

गिजुभाई-ग्रंथमाला–5

माँ-बापों की माथापच्ची

लेखक
गिजुभाई

अनुवाद
काशिनाथ त्रिवेदी

मोण्टीसोरी-बाल-शिक्षण-समिति,
राजलदेसर (चूरू) 331802

© विमलाबहन बधेका
दक्षिणामूर्ति-बालमन्दिर
भावनगर–364 002 (गुजरात)

प्रकाशक :
मोण्टीसोरी-बाल-शिक्षण-समिति,
राजलदेसर

आर्थिक सहयोग :
श्री शोभाचंद मांगीलाल बिनायका
350 न्यू क्लोथ मार्केट
अहमदाबाद

प्रकाशन-वर्ष : 1987
प्रतियां : 1,100
मूल्य : आठ रुपये मात्र

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स,
सुगन निवास, बीकानेर

प्रकाशकीय

हमारे साथियों ने जब यहाँ पर सन् 1954 में अभिनव बालभारती नामक संस्था स्थापित की थी, तभी मेरे जेहन में बाल-शिक्षण के साथ ही साथ अध्यापकों को प्रशिक्षण देने का विचार भी उठ रहा था, बल्कि अभिभावकों द्वारा प्रशिक्षण लेने का विचार भी मेरे मन में बहुत प्रबल था। मैं सौभाग्यशाली रहा कि एक बार कलकत्ते में मुझे प्रख्यात बाल-शिक्षाविद् स्व. के. यू. भामरा से प्रशिक्षण लेने का अवसर मिला, सन् 1958-59 में।

उस प्रशिक्षण ने मेरे इस चिंतन की दिशा को और भी पुष्ट कर दिया कि बाल-शिक्षण के लिए अध्यापकों का ही नहीं, माता-पिताओं का भी नजरिया बदलना जरूरी है। मेरे आग्रह पर स्व. के. यू. भामरा यहाँ पधारे और सन् 1962 में उन्होंने मोण्टीसोरी प्रशिक्षण का काम शुरू किया। आज 25 वर्षों से अध्यापकों के शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्यक्रम यहाँ जारी है और अब तक लगभग 200 अध्यापक प्रशिक्षण का लाभ हासिल कर चुके हैं।

मैं अब भी बराबर अनुभव करता रहा हूँ कि अध्यापक बनने के लिए मोण्टीसोरी-शिक्षण का प्रशिक्षण लेना एक बात है, और बच्चों के माता–पिता बनने के लिए प्रशिक्षण लेना एक अलग अहमियत रखता है। मेरी पत्नी और दोनों पुत्रियों ने महज इसी इरादे से प्रशिक्षण लिया था। मैं चाहता हूँ कि अभिभावकों को इस दिशा में प्रेरित किया जाना जरूरी है। इसी इरादे से पिछले दिनों हमने संस्था में 'अभिभावकत्व-शिक्षण' पर एक संगोष्ठी भी आयोजित की थी। संगोष्ठी में बाल-शिक्षण के अछूते पक्षों पर तो रोशनी डाली ही गई, संस्था के लिए एक सुझाव भी सामने आया कि माता-पिता की शिक्षा के लिए शैक्षिक-साहित्य प्रकाशित कराया जाए। हमने इसे

स्वीकार किया, और पहला कदम यह उठाना ज़रूरी समझा कि देश के महान बाल-शिक्षाविद् स्व. गिजुभाई बधेका की गुजराती भाषा में लिखी हुई पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद करवाकर पुस्तकाकार प्रकाशित करें। इस दिशा में इंदौर के महान गाँधीवादी चिंतक एवं मध्य भारत के प्रथम शिक्षामन्त्री श्री काशिनाथ त्रिवेदी का हमें अभूतपूर्व सहयोग एवं प्रोत्साहन मिला। स्व. गिजुभाई की अनेक पुस्तकों का वे सन् 1932-34 के कार्यकाल में ही अनुवाद कर चुके हैं, और शेष का भी अनुवाद करने का उनका संकल्प है। इसी दिशा में मुझे 'शिविरा-पत्रिका' के संपादकीय सहकर्मी श्री रामनरेश सोनी का भी सहयोग मिला है।

पुस्तक-प्रकाशन का काम अपने आप में बहुत कठिन होता है, विशेष-तया अर्थ के अभाव में तो असम्भव प्राय: हो जाता है। पर हमारा सौभाग्य है कि मेरे अनुरोध को यशस्वी दानदाताओं ने स्वीकार किया, और प्रत्येक पुस्तक को अकेले अपने ही आर्थिक-सहयोग से छापने का भार वहन किया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'माँ-बापों की माथापच्ची' के प्रकाशन का व्यय भार अहमदाबाद के हमारे मित्र तथा बाल शिक्षा में गहन रुचि रखने वाले श्री शोभाचन्द मांगीलाल बिनायका ने सहर्ष वहन किया है। अभिभावकों की शिक्षा की बड़ी ही रोचक तथा उपयोगी पुस्तक के प्रकाशन के माध्यम बने हैं वे। इस योगदान के लिए संस्था की ओर से उनका कोटिश: आभार।

इस पुस्तक की 'भूमिका' के लिए जाने-माने शिक्षाविद् श्री जगदीश नरायण पुरोहित का और सम्पादकीय निवेदन के लिए श्रद्धेय काशिनाथ त्रिवेदी का मैं हार्दिक आभार मानता हूँ। काशिनाथजी ने तो गिजुभाई की समस्त गुजराती पुस्तकों को ग्रन्थमाला के रूप में प्रकाशित करने हेतु दक्षिणामूर्ति-बालमंदिर, भावनगर की आचार्या श्रद्धेय विमलाबहन बधेका से भी हमारे लिए पत्राचार करके उनकी स्वीकृति प्राप्त की है। इसके लिए भी हम उनके आभारी हैं।

—कुन्दन बैद

मोण्टीसोरी-बाल-शिक्षण-समिति
राजलदेसर

संपादक का निवेदन

हिन्दी में गिजुभाई-ग्रंथमाला का अवतरण

अपने जन्म से पहले अपनी माँ के गर्भ में, और जन्म के बाद अपने माता-पिता और परिवार के बीच, हमारे निर्दोष और निरीह बच्चों को हमारी ही अपनी नादानी, नासमझी और कमजोरियों के कारण शरीर और मन से जुड़े जो अनगिनत दु:ख निरन्तर भोगने पड़ते हैं, जो उपेक्षा, जो अपमान, जो तिरस्कार, जो मार-पीट और डाँट-फटकार उनको बराबर सहनी पड़ती है, यदि कोई माई का लाल इन सब पर एक लम्बी दर्द-भरी कहानी लिखे, तो निश्चय ही वह कहानी, हम में से जो भी संवेदनशील हैं, और सहृदय हैं, उनको रुलाये बिना रहेगी ही नहीं। अपने ही बालकों को हमने ही तन-मन के जितने दु:ख दिए हैं, चलते-फिरते और उठते-बैठते हमने उनको जितना मारा-पीटा, रुलाया, सताया और दुरदुराया है, उसकी तो कोई सीमा रही ही नहीं है। इन सबकी तुलना में हमारे घरों में बालकों के सही प्यार-दुलार का पलड़ा प्राय: हलका ही रहता रहा है।

ऐसे अनगिनत दुखी-दरदी बालकों के बीच उनके मसीहा बनकर काम करने वाले स्वर्गीय गिजुभाई बधेका की अमृत वर्षा करने वाली लेखनी से लिखी गई, और माता-पिताओं और शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए वरदान-रूप बनी हुई छोटी-बड़ी गुजराती पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद इस गिजुभाई-ग्रंथमाला के नाम से प्रकाशित करने का सुयोग और सौभाग्य बाल-शिक्षा के काम में लगी हमारी एक छोटी-सी शिक्षा-संस्था को मिला है, इसकी बहुत ही गहरी प्रसन्नता और धन्यता हमारे मन:-प्राण में रम रही है। हमको लगता है कि इससे अधिक पवित्र और पावन काम हमारे हिस्से न पहले कभी आया, और न आगे कभी आ पाएगा। हम अपनी इस कृतार्थता को किन शब्दों में और कैसे व्यक्त करें, इसको हम समझ नहीं पा रहे हैं। हम नम्रतापूर्वक मानते हैं

कि परम मंगलमय प्रभु को परम सुख देने वाली आन्तरिक प्रेरणा का ही यह एक मधुर और सुखद फल है। इसको लोकात्मा रूपी और घट-घट-व्यापी प्रभु के चरणों में सादर, सविनय समर्पित करके हम धन्य हो लेना चाहते हैं :
त्वदीय वस्तु गोविन्द: तुभ्यमेव समर्पयेत् ! :

क्राउन सोलह पेजी आकार के कोई तीन हजार की पृष्ठ संख्या वाली इस गिजुभाई-ग्रंथमाला में गिजुभाई की जिन 15 पुस्तकों के हिंदी अनुवाद प्रकाशित करने की योजना बनी है, उनमें चार पुस्तकें माता-पिताओं के लिए हैं। चारों अपने ढंग की अनोखी और मार्गदर्शक पुस्तकें हैं। घरों में बालकों के जीवन को स्वस्थ, सुखी और समृद्ध बनाने की प्रेरक और मार्मिक चर्चा इन पुस्तकों की अपनी विशेषता है। ये हैं :

1. माता-पिता से
2. मां-बाप बनना कठिन है
3. माता-पिता के प्रश्न, और
4. माँ-बापों की माथापच्ची।

बाकी ग्यारह पुस्तकों में बाल-जीवन और बाल-शिक्षण के विविध अंगों की विशद चर्चा की गई है। इनके नाम यों हैं :

1. मोण्टीसोरी-पद्धति
2. बाल-शिक्षण, जैसा मैं समझ पाया
3. प्राथमिक शाला में शिक्षा-पद्धतियां
4. प्राथमिक शाला में शिक्षक
5. प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा
6. प्राथमिक शाला में चिट्ठी-वाचन
7. प्राथमिक शाला में कला-कारीगरी की शिक्षा, भाग 1-2
8. दिवास्वप्न
9. यदि आप शिक्षक हैं
10. चलते-फिरते
11. कथा-कहानी का शास्त्र, भाग 1-2

इनमें 'मोण्टीसोरी पद्धति', 'दिवास्वप्न' और 'कथा-कहानी का शास्त्र' ये तीन पुस्तकें अपनी विलक्षणता और मौलिकता के कारण शिक्षा-जगत् के लिए गिजुभाई की अपनी अनमोल और अमर देन बनी हैं। इनमें बाल-देवता के पुजारी और बाल-शिक्षक गिजुभाई ने बहुत ही गहराई में जाकर अपनी आत्मा को उंडेला है। बाल-जीवन और बाल-शिक्षण के मर्म को समझने में ये अपने पाठकों की बहुत मदद करती हैं। बार-बार पढ़ने, पीने, पचाने और अपनाने लायक भरपूर सामग्री इनमें भरी पड़ी है। ये अपने पाठकों को बाल-जीवन की गहराइयों में ले जाती हैं, और बाल-जीवन के मर्म को समझने में पग-पग पर उनकी सहायता करती हैं।

गिजुभाई की इन पन्द्रह रचनाओं में से केवल दो रचनाएं, 'दिवास्वप्न' और 'प्राथमिक शाला में भाषा-शिक्षा' सन् 1934 में पहली बार हिन्दी में प्रकाशित हुई थीं। शेष सब रचनाएँ अब सन् 1987 में क्रम-क्रम से पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने वाली हैं। पचास से भी अधिक वर्षों तक हिन्दी-भाषी जनता का हमारा शिक्षा-जगत् इन पुस्तकों के प्रकाशन से वंचित बना रहा। न गिजुभाई का जन्म-शताब्दी-वर्ष आता, और न यह पावन अनुष्ठान हमारे संयुक्त पुरुषार्थ का एक निमित्त बनता। 15 नवम्बर, 1984 को शुरू हुआ गिजुभाई का जन्म-शताब्दी वर्ष 15 नवम्बर, 1985 को पूरा हो गया। किन्तु गुजरात की बाल-शिक्षा-संस्थाओं ने और बाल-शिक्षा-प्रेमी भाई-बहनों ने गुजरात की सरकार के साथ जुड़कर जन्म-शताब्दी-वर्ष की अवधि 15 नवम्बर, 86 तक बढ़ाई, और गिजुभाई के जीवन और कार्य को उसके विविध रूपों में जानने और समझने की एक नई लहर गुजरात-भर में उठ खड़ी हुई। गुजरात के पड़ौसी के नाते उस लहर ने राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तरप्रदेश के हम कुछ साथियों को भी प्रेरित और प्रभावित किया। फलस्वरूप गिजुभाई-ग्रंथमाला को हिन्दी में प्रकाशित करने का शुभ संकल्प राजस्थान के राजलदेसर नगर के बाल-शिक्षा-प्रेमी नागरिक भाई श्री कुन्दन बैद के मन में जागा, और उन्होंने इस ग्रंथमाला को हिन्दी-भाषी जगत् के हाथों में सौंपने का बीड़ा उठा लिया।

हमको विश्वास है कि भारत का हिन्दी-भाषी जगत्, विशेषकर उसका हिन्दी-भाषी शिक्षा-जगत्, अपने बीच इस गिजुभाई-ग्रंथमाला का भरपूर

स्वागत, मुक्त और प्रसन्न मन से करेगा, और इससे प्रेरणा लेकर अपने क्षेत्र के बाल-जीवन और बाल-शिक्षण को सब प्रकार से समृद्ध बनाने के पुण्य-पावन कार्य में अपने तन-मन-धन की तल्लीनता के साथ जुट जाना पसन्द करेगा। हिन्दी में गिजुभाई-ग्रन्थमाला के अवतरण की इससे अधिक सार्थकता और क्या हो सकती है ?

अपने जीवन-काल में गिजुभाई ने अपनी रचनाओं को अपनी कमाई का साधन बनाने की बात सोची ही नहीं। अपने चिन्तन और लेखन का यह नैवेद्य भक्तिभावपूर्वक जनता जनार्दन को समर्पित करके उन्होंने जिस धन्यता का वरण किया, वह उनकी जीवन-साधना के अनुरूप ही रहा। गिजुभाई के इन पदचिह्नों का अनुसरण करके हमने भी अपनी गिजुभाई-ग्रंथमाला को व्यावसायिकता के स्पर्श से मुक्त रखा है, और ग्रंथमाला की सब पुस्तकों को उनके लागत मूल्य में ही पाठकों तक पहुँचाने का शुभ निश्चय किया है।

बीकानेर, राजस्थान, के हमारे बाल-शिक्षा-प्रेमी साथी, जाने-माने शिक्षाविद् और गिजुभाई के परम प्रशंसक श्री रामनरेश सोनी इस ग्रन्थमाला के अनुष्ठान को सफ़ल बनाने में हमारे साथ सक्रिय रूप से जुड़ गए हैं, इससे हमारा भार बहुत हलका हो गया है।

हमको खुशी है कि हमारे साथी श्री कुन्दन बेंद इस ग्रन्थमाला की 15 पुस्तकों के लिए पन्द्रह ऐसे उदार और सहृदय दाताओं की खोज में लगे हैं, जो इनमें से एक-एक पुस्तक के प्रकाशन का सारा ख़र्च स्वयं उठा लेने को तैयार हों। इसमें भी पहल श्री कुन्दन बेंद ने ही की है। त्याग और तप की बेल तो ऐसे ही खाद-पानी से फूलती-फलती रही है !

—काशिनाथ त्रिवेदी

गांव—पीपल्याराव,
इन्दौर—452 001

दो शब्द

(मूल गुजराती पुस्तक का पहला संस्करण)

सिरपच्ची करना किसी को अच्छा नहीं लगता। पर मनुष्य से सिरपच्ची करवाए बिना भगवान को भी चैन कहाँ है ? राव से लेकर रंक तक सब के नसीब में सिरपच्ची ही सिरपच्ची बदी है ! माँ-बापों को जिस सिरपच्ची से गुजरना पड़ता है, उससे तो भगवान ही उनको बचाएँ ! वे तो सोचते हैं कि इससे अच्छा तो यही है कि घर में बच्चे हों ही नहीं !

फिर भी माँ-बापों की यह सिरपच्ची अपने आप में कितनी अधिक मीठी होती है, इसका पता तो आपको तभी चले, जब आप किसी माता से जाकर पूछें। और आप यह निश्चित समझिए कि इस सिरपच्ची को मीठा मानने वाली माताएँ, एक-दो नहीं, बल्कि लाखों और करोड़ों है।

तथापि इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की मीठी सिरपच्ची कुछ समय के लिए तो माँ-बापों के जीवन को बेस्वाद बना ही देती है। इसलिए आज मेरे मित्र गिजुभाई सबके सामने प्रकट होकर कह रहे हैं : 'हे सारी दुनिया के माँ-बापो ! आप जिसको सिरपच्ची कहते हैं, असल में वह सिरपच्ची है ही नहीं। आप अपने मन को स्थिर रखकर देखेंगे, तो सिरपच्ची सिरपच्ची रहेगी ही नहीं। उसके स्थान पर आपको कुछ और ही दिखाई देगा।' ऊपर-ऊपर से सिरपच्ची-सी दीखने वाली चीज़ सचमुच में कुछ और ही है, इसको समझाने के लिए ही मेरे मित्र ने यह पुस्तक लिखी है। जो अपनी आँखों पर गिजुभाई का चश्मा चढ़ा लेंगे, उनको यह नया दर्शन हो सकेगा। यह चश्मा ऐसा है कि इसको हर कोई पहन सकता है। किन्तु जो लोग सिरपच्ची देखने का आग्रह रखकर नया चश्मा पहनना ही नहीं चाहें, उनके लिए तो बेचारे गिजुभाई कर भी क्या सकते हैं ? ऐसों की सिरपच्ची उनको मुबारक रहे !

7-8-1934

—नानाभाई का. भट्ट
नियामक

आमुख
(मूल गुजराती पुस्तक का दूसरा संस्करण)

स्वर्गीय गिजुभाई की अप्राप्य पुस्तकों को फिर प्रकाशित करने का काम व्यवस्थित रूप से शुरू किया गया है। क्रम-क्रम से सभी पुस्तकें प्रकाशित होती रहेंगी।

यह पुस्तक माँ-बापों सम्बन्धी पुस्तकों में से एक है। लेखन, शैली और विचार-निरूपण की दृष्टि से यह पुस्तक बिलकुल ही नए प्रकार की है।

स्वर्गीय गिजुभाई ने अपने विचारों को, शिक्षा-सम्बन्धी सिद्धान्तों को, और अपनी अनुभूतियों को अपनी अनेकानेक कृतियों द्वारा व्यक्त किया है। इनमें से कुछ गम्भीर तात्विक चर्चा वाली वैज्ञानिक कृतियां हैं। कुछ सीधी उपदेशात्मक कृतियाँ हैं। अपनी कुछ कृतियों में उन्होंने शिक्षा-सम्बन्धी अपने सिद्धान्तों का ज़ोरदार प्रतिपादन किया है। इन सब में यह पुस्तक एक नई ही शैली के साथ हमारे सामने आई है।

माँ-बापों को ध्यान में रखकर लिखी गई इस पुस्तक में लम्बे-लम्बे लेख नहीं हैं। गम्भीर तात्विक चर्चा भी नहीं है। इसमें तो हमारे रोज़-रोज़ के जीवन में घटने वाली सच्ची घटनाओं का सुन्दर कलापूर्ण निरूपण है। इन घटनाओं को अपने सामने रखकर गिजुभाई ने इनको शिक्षा-विषयक मूल्यों से जोड़ा है। पूज्य गिजुभाई के गहरे अवलोकनों और विशाल अनुभवों के खजाने में से हमको ये रत्न मिले हैं।

'ईसप कथा', 'पंचतंत्र' और 'हितोपदेश' आदि के लेखकों से लेकर आज तक के सब लेखकों ने अपनी गम्भीर बातें सरल शैली के साथ कथा, कहानी आदि के रूप में जनता के सामने रखने का प्रयत्न किया है। क्योंकि लेखक मानते हैं कि यह पद्धति प्रभावकारी और अचूक होती है। लम्बे उपदेशात्मक लेखों अथवा भाषणों से पाठकों और श्रोताओं को वह सब नहीं मिलता, जो किसी छोटी-सी प्रसंग-कथा से, रेखाचित्र से, रूपक से अथवा संवाद से मिल सकता है। और, यह बात गिजुभाई की इस कृति पर पूरी तरह लागू होती है।

इस पुस्तक की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें दी गई प्रसंग-कथाओं को पढ़ते-पढ़ते पाठक भूल जाता है कि वह इनसे अलग है। उसको ऐसा लगता है, मानो अपने घर में अथवा अपने ही जीवन में घटने वाली सब छोटी-बड़ी घटनाएं नए-नए नाम धारण करके उसके सामने आ खड़ी हुई हैं। पाठक इनके साथ एक व्यक्तिगत लगाव का अनुभव करता है। चम्पा या सुमति, रामजी काका या लछमन, आबाद बहन या बचु भाई, जैसे इन प्रसंग-कथाओं के सारे पात्र पाठक को अपने घर के, गली के और समाज के जीते-जागते पात्र से लगते हैं और ये पात्र ही उसको कुछ-न-कुछ नया कह जाते हैं।

इस पुस्तक में वर्णित प्रसंगों में भी करने योग्य काम और न करने योग्य काम, सही निर्णय या ग़लत निर्णय, बालकों के साथ काम लेने की सच्ची रीति और खोटी रीति आदि की चर्चा इतने सुन्दर और विविध रूप में की गई है कि वह पाठक के मन पर अपना अचूक प्रभाव छोड़े बिना रहती ही नहीं।

अन्त में मैं यहाँ पूज्य गिजुभाई के ही शब्दों को दोहराता हूं :

'हे सारी दुनिया के माँ-बापो! आप जिसको सिरपच्ची कहते हैं, असल में वह सिरपच्ची है नहीं। आप अपने मन को स्थिर रख कर देखेंगे, तो सिरपच्ची, सिरपच्ची रहेगी ही नहीं। उसके स्थान पर आपको कुछ और ही दिखाई देगा।' 'कुछ और ही' दिखाने का गिजुभाई का यह उद्देश्य तभी सफल हो सकेगा, जब माता-पिता इस पुस्तक को पढ़ने के बाद अपनी रोज़-रोज़ की सिरपच्ची से कुछ छुटकारा पाएँगे, अपने बालकों को कुछ समझना सीखेंगे, और गिजुभाई की दृष्टि से देखना सीख लेंगे। घर-घर में फैले आज के कलह, क्लेश और असंयम के वातावरण को कम करना हो, तो इन सिरपच्चियों के विषय में सोचे बिना काम चलेगा ही नहीं। तभी बालकों और माता-पिताओं का जीवन कुछ सुसंगति के साथ एकरस बन कर चल सकेगा।

—नरेन्द्र बधेका

भूमिका

एक नए शिक्षाशास्त्र का सूत्रपात

माँ-बापों की माथापच्ची पुस्तक की भूमिका लिखने का आमंत्रण मिला, तो मन में बहुत संकोच हुआ। संकोच का मुख्य कारण यह था कि गिजुभाई एक महान् बाल-शिक्षक थे, और मैं एक सामान्य शिक्षक हूँ। उन्होंने बाल-मन की गहराइयों में प्रवेश करके अपने अनुभवों के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले, वे असल में आज भी इतने उपयोगी हैं कि उनको आत्मसात करके प्रत्येक अभिभावक और बाल-शिक्षक अपने बालक-बालिकाओं के यथोचित विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकता है। ऐसे महान् बाल-शिक्षक और लेखक की पुस्तक की भूमिका लिखना मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। मेरी दृष्टि में गिजुभाई ने इस पुस्तक में बाल-व्यवहार के जो विभिन्न शब्द-चित्र प्रस्तुत किये हैं, वे इतने सजीव एवं मार्मिक हैं कि यह पुस्तक बाल-शिक्षकों और अभिभावकों के लिए एक सन्दर्भ पुस्तक का काम करेगी। सच तो यह है कि बाल-शिक्षा के क्षेत्र में यह एक अनमोल पुस्तक है।

आधुनिक युग में हुए अनुसंधानों यथा—कौलमैन (1966), प्लाउडन (1967,) ह्यूसेन (1967), थार्नडाइक (1973), कोम्बर और कीव्ज (1973) और पर्वज (1973) ने यह प्रतिपादित किया है कि विद्यालय के स्तर पर विभिन्न बालक-बालिकाओं की शिक्षा-सम्बन्धी उपलब्धियों का सीधा सम्बन्ध उनके परिवार में विद्यमान पर्यावरण से होता है। जिन परिवारों में माता-पिता अपने बालक-बालिकाओं से बातें करते हैं, उनके साथ खेलते हैं, उनको कहानियाँ सुनाते हैं, उनको अपने साथ घूमने ले जाते हैं, उनके व्यक्तित्व को आदर देते हैं, उनको परिवार के विभिन्न क्रियाकलापों में भाग लेने का अवसर देते हैं, उनके प्रति स्नेह रखते हैं, उनको समुचित स्वतंत्रता देते हैं, और उनको स्वावलम्बी जीवन व्यतीत करने की दिशा में मदद करते हैं, ऐसे पर्यावरण में पलनेवाले बालक-बालिकाओं का समुचित विकास होता है, और जिन परिवारों में ऐसा नहीं होता, उन परिवारों में पलनेवाले बालक-बालिकाओं का समुचित विकास नहीं होता। ऐसे बालक-बालिकाओं को यदि विद्यालय में भी स्नेह, आदर और मैत्रीपूर्ण व्यवहार नहीं मिलता, तो कालान्तर में वे असामाजिक प्रवृत्तियों में लग जाते हैं। बड़े होने पर ऐसे बालक तोड़फोड़, हिंसा और विघटनकारी प्रवृत्तियों में सक्रिय हो जाते हैं। इसलिए आज के हमारे भारतीय जीवन की यह एक प्रमुख आवश्यकता है कि परिवारों में बालक-बालिकाओं का लालन-पालन मैत्री, स्नेह, आदर, स्वतंत्रता, सहयोग और स्वावलम्बन के पर्यावरण में हो। इसके लिये अभिभावकों और बाल-शिक्षकों के व्यवहार में और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की आवश्यकता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। यह पुस्तक इस आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में निस्संदेह एक महत्वपूर्ण प्रयास है।

आइए, हम यह देखने का प्रयास करें कि इस पुस्तक में बाल-विकास के संदर्भ में किन बिन्दुओं को उभारा गया है।

जब बालक रोता है, तो उसका कोई कारण होता है। वह ऐसे ही नहीं रोता। पुस्तक के आरंभ में ही एक माँ का शब्द-चित्र प्रस्तुत किया गया जो बालक को पालने में झुलाते-झुलाते थक गई है, और खीज कर अपने पति से कहती है : 'कैसा अभागा बच्चा है, जो रात में भी सोने नहीं देता।' उसने पालने की डोरी अपने पति को सौंप दी। पति भानुप्रसाद ने बालक को झुलाना शुरू किया, परन्तु बालक का रोना बंद नहीं हुआ। उन्होंने जिज्ञासा-वश पालने पर निगाह डाली, तो पाया कि पालने में खटमलों की भरमार थी। वे बालक का खून-चूसने में लगे हुए थे। भानुप्रसाद ने बालक को पालने से हटाकर माँ की बगल में सुला दिया। बालक का रोना बंद हो गया, और वह शीघ्र सो गया। बड़ा स्वाभाविक शब्द-चित्र है। छोटे बालकों से सम्बन्धित ऐसे ही अनेक शब्द-चित्र इसमें प्रस्तुत किये हैं जिनके अध्ययन से यह समझ विकसित होती है कि बालकों के साथ हमको कैसा व्यवहार करना चाहिए।

बालक के लिए संसार में सब कुछ नया होता है। वह एक वैज्ञानिक की भाँति संसार की खोज में लगा रहता है। वह कभी कंकड़ मुँह में लेता है, कभी वस्तुओं को तोड़ता है, कभी मिट्टी और पानी के साथ खेलता है। वह नई-नई वस्तुएँ प्राप्त करना चाहता है। माता-पिता उसकी इन प्रवृत्तियों से परेशान रहते हैं। वे बालक पर खीजते हैं, वे उसको डाँटते हैं, पीटते हैं, प्रत्येक कार्य करने के लिए वे उनको रोकते और टोकते रहते हैं। गिजुभाई ने 'रहने दो, दूधी, रहने दो' शीर्षक प्रसंग-कथा में माता-पिता की इस परेशानी को बहुत ही सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। इस शब्द-चित्र में बालिका (दूधी) के क्रियाकलापों से उसकी माँ परेशान है। यदि दूधी बरतन उठाती, तो माँ कहती : 'रहने दे, दूधी, रहने दे!' दूधी उस काम को छोड़कर दरवाजे के पल्ले से लटक कर झूलना चाहती, तो उसको फिर वही बात सुनने को मिलती : 'रहने दे, दूधी, रहने दे!' आखिर दूधी करे, तो क्या करे? यह बात दूधी की समझ में आती नहीं थी। शब्द-चित्र में गिजुभाई ने दूधी की माँ को सही परामर्श देकर उसकी परेशानी समाप्त की है, और दूधी को भी उसकी रुचि के काम में लगने का अवसर देकर अपनी माँ की डाँट-फटकार से मुक्ति दिलाई है। यह शब्द-चित्र इतना आकर्षक है कि जो भी माता-पिता इसको पढ़ेंगे, वे अवश्य ही अपने बालक-बालिकाओं के प्रति यथोचित व्यवहार प्रदर्शित कर सकेंगे।

गिजुभाई ने अपने शब्द-चित्र प्रस्तुत करते समय पर्याप्त संतुलन रखा है। उन्होंने जहाँ एक ओर अपने बालकों पर खीजनेवाले और उनको पीटनेवाले अभिभावकों के शब्द-चित्र प्रस्तुत किये हैं, वहीं अनेक शब्द-चित्र ऐसे भी हैं, जहाँ परिवारों में बालकों के प्रति पर्याप्त स्नेह और सद्भाव का वातावरण पाया जाता है। ऐसा ही एक शब्द-चित्र आबाद बहन का है, जिसके बूट मन्दिर में दर्शन के लिए जाने पर खो जाते हैं। इस पर आबाद बहन रोती नहीं हैं। वे तो दूसरे बच्चों के साथ ख़ुशी-ख़ुशी चलने और दौड़ने लगती हैं। उनके मन में अपने घर जाते समय किसी तरह का कोई भय नहीं था। लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि आबाद बहन की माँ बहुत संवेदनशील थीं। बूट खो जाने पर उन्होंने अपनी बालिका को कुछ भी नहीं कहा। इसी का परिणाम था कि बूट खो जाने के बाद भी बालिका के मन पर कोई तनाव नहीं रहा। यदि ऐसा परिवार होता, जहाँ बालकों की पिटाई होती है, तो यह बालिका बूट नहीं मिलने पर बहुत रोती और घर जाने से डरती। परन्तु आबाद बहन के माध्यम से गिजुभाई ने एक ऐसी बालिका का चित्र उपस्थित किया है, जो बूट खो जाने की घटना को भी सहज और स्वाभाविक रूप से लेती है, क्योंकि अपने परिवार में उसको अपने माता-पिता का स्नेह, आदर और सद्भाव सदैव ही उपलब्ध था।

बालक सरल, सीधा और निष्पाप होता है। वह जितनी भी बुराइयाँ सीखता है, हम बड़ों से सीखता है। यदि बालक झूठ बोलता है, चोरी करता है, झगड़ा करता है या कोई दूसरा अनुचित काम करता है, तो इसका कारण बालक का अपना पारिवारिक वातावरण है। वह तो जैसा देखेगा, वैसा करेगा, जैसा सुनेगा, वैसा बोलेगा!

एक जगह गिजुभाई ने बालक की सरलता का एक बहुत ही स्वाभाविक शब्द-चित्र खींचा है। चम्पा के घर पर एक दिन एक गरीब आदमी आया। बेचारे के साथ उसका एक बच्चा भी था। माँ ने उसको बासी रोटी दी। पिताजी बोले, इनको एकाध गरम रोटी भी दो। रोटी सूखी थी, इसलिए बालक से खाई नहीं जा रही थी। चम्पा घर में गई। बरनी में से घी निकालकर ले आई, और गरीब आदमी को देते हुए बोली : 'इस बच्चे को बिना घी की रोटी अच्छी नहीं लगेगी।' माँ ने कहा : 'इस लड़की को कोई अक्ल ही नहीं है। यह समझती ही नहीं है कि घी किसको देना चाहिए, और किसको नहीं।' इतना लिखकर गिजुभाई ने प्रश्न उपस्थित किया है कि 'क्या सचमुच चम्पा में अक्ल नहीं है?' चम्पा के ऐसे नौ प्रसंग दिए गए हैं, जहाँ उसने उन मानवीय मूल्यों के अनुसार काम किए, जिनकी दुहाई हम आए दिन देते रहते हैं। प्रत्येक प्रसंग के साथ प्रश्न उपस्थित किया गया है कि क्या चम्पा मूर्ख है? क्या चम्पा गँवार है? क्या चम्पा कायर है? क्या चम्पा चालाक है? क्या वास्तव में चम्पा में समझ नहीं है? आदि-आदि। लगता है कि गिजुभाई ने इन प्रसंगों का वर्णन करके हमारी इस समस्या का समाधान कर दिया है कि

वर्तमान में सामाजिक जीवन में मानवीय मूल्यों का जो क्षरण हुआ है, उसके लिए जिम्मेवार कौन हैं ?

विभिन्न प्रसंगों को पढ़ने के बाद माता-पिताओं और बाल-शिक्षकों के मन में यह उमंग उठना स्वाभाविक है कि बालकों के लिए हमको भी कुछ करना चाहिए। एक जगह निष्कर्ष-रूप में मार्गदर्शन दिया गया है : 'आप कोई एक काम करना चाहते हैं, तो क्या करेंगे? बच्चों को मारना-पीटना छोड़ दीजिए। यदि आप कोई दो काम करना चाहते हैं, तो क्या करेंगे? बालकों को डांटिए-डपटिये मत। बालकों का अपमान मत कीजिए। आप कोई तीन काम करना चाहें, तो क्या करेंगे? बालकों को डराइए मत। लालच देकर समझाइए मत। बालकों को सर पर चढ़ाइए मत। आप चार काम करना चाहेंगे, तो क्या करेंगे? बालकों को बार-बार उपदेश मत दीजिए, उनको बार-बार के लाड़-चाव से, प्यार-पुचकार से बचा लीजिए। आप पाँच काम करना चाहेंगे, तो क्या करेंगे? बालक जो काम आपसे करवाना चाहे, आप उसको मत कीजिए, बल्कि बालक को वह काम करना सिखा दीजिए। बालक के काम को हल्का मत कीजिए। बालक से उसका काम मत छीनिए।

ऐसे अनेकानेक सुझाव और मार्गदर्शन-बिन्दु इस पुस्तक में भरे पड़े हैं। जैसा कि मैंने लिखा है, यह पुस्तक पालकों के लिए एक मार्गदर्शिका सिद्ध होगी। इस पुस्तक का पर्याप्त प्रचार और प्रसार होना चाहिए। इसमें उन सब के लिए अमूल्य सामग्री विद्यमान है, जो अपने बालक-बालिकाओं के समुचित विकास में रुचि रखते हैं।

मैं श्रद्धेय काशिनाथजी त्रिवेदी का बहुत उपकार मानता हूँ कि उन्होंने इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करके हिन्दी-जगत् के पाठकों के लिए यह मूल्यवान पुस्तक उपलब्ध करा दी है। मैं मोण्टीसोरी-बाल-शिक्षण-समिति, राजलदेसर को भी अपने हार्दिक धन्यवाद अर्पित करता हूँ, जिसने मुझसे भूमिका लिखवाकर इस पुस्तक को अथ से इति तक पढ़ जाने का सुअवसर मुझको दिया है।

प्रिंसिपल —जगदीश नारायण पुरोहित
टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, बीकानेर

यह कैसी सिरपच्ची ?

: 1 :
रोते को चुपाना

(1)

'सुनते हैं ? मैं तो इसको झुलाते-झुलाते थक रही हूँ। मेरे हाथ दुखने लगे हैं। पता नहीं, ये कैसे अभागे बच्चे हैं ? दिन-भर तो हैरान और परेशान करते ही हैं, अब रात में भी सोने नहीं दे रहे। लीजिए, अब यह डोरी आप ही खींचिए। मैं तो सोती हूँ। आपको न खींचनी हो, तो मत खींचिए। सुबह तक थक कर सो जाएगा।'

भानुप्रसाद ने पालने की डोरी अपने हाथ में ले ली। वे भले आदमी थे। उन्होंने बच्चे को झुलाना शुरू कर दिया।

नन्हा चन्दू थोड़ी देर के लिए चुप रहता और फिर चीखकर रोने लगता। भानुप्रसाद जरा जोर से झुलाना शुरू करते, तो चन्दू कुछ देर के लिए चुप रह जाता, और बाद में फिर रोने लगता।

भानुप्रसाद भी थके। बोले : 'पता नहीं, आज इस चन्दू को क्या हुआ है! इस तरह सारी रात तो यह कभी रोता नहीं है। देखूँ, इसके पालने पर तो थोड़ी निगाह डालूँ।

भानुप्रसाद ने दीए के उजाले में पालने पर नज़र दौड़ाई। देखा कि अन्दर खटमलों की कतारें लगी हैं। अनगिनत खटमल! सब के सब बेचारे चन्दू का खून चूसने में लगे थे।

भानुप्रसाद ने चन्दू को उसकी माँ की बगल में सुला दिया। चन्दू तुरन्त ही सो गया। चन्दू को माँ भी सो गई। पिता भी गहरी नींद में सो गए।

(2)

साँझ पड़ी। दीया-बत्ती का समय हुआ। तभी कोई एक साल की उमर वाली विजया ने रोना शुरू किया।

माँ बोलीं : 'इस विजया ने फिर अपना समय साध लिया! रोज-रोज़ का यह रोना कैसे सहा जाए?'

मौसी ने कहा : 'शाम के समय तो बच्चे रोते और मचलते ही हैं। इस तरह घबराने से तो काम चलेगा नहीं। यह तो इन छोटे बच्चों की परवरिश का मामला है।'

पिता बोले : 'कोई इन बच्चों को सँभालना जानता भी है? कुछ देर के लिए झुनझुना बजाइए, चूसनी थमा दीजिए। देखें, बच्चा चुप कैसे नहीं होता है?'

छोटी बहन ने कहा : 'बड़े भैया! आप क्यों परेशान हो रहे हैं? यह तो रोज ही रोती है। कुछ देर तक रोने के बाद अपने आप थक जाएगी।'

विजया बराबर रोती रही। झुनझुना बजाया, पर उसको सुने कौन? खिलौना दिखाया, पर उसकी तरफ देखे कौन? वह तो अपनी आँखें मलती जाती और रोती रहती।

पिता ने कहा : 'कल इसको डॉक्टर के पास ले जाना होगा।'

माँ बोलीं : 'भला, इसमें डॉक्टर क्या करेंगे? यह कम्बख्त तो ऐसी ही खिद्दिन है।'

मौसी ने कहा : 'यह तो अभी पहली ही बच्ची है। इसको लेकर आप सब इतने परेशान हैं। जब मेरी तरह चार-पाँच बच्चे होंगे, तो आप क्या करेंगे?'

इतने में दादी माँ दर्शन करके लौटीं।

पिता ने कहा : 'अम्माजी! इस विजया को जरा सँभालिए। यह बड़ी देर से रो रही है।'

दादी माँ बोलीं : 'आ जाओ, मेरे बेटे, मेरी विजया, आ जाओ आओ!'

दादी माँ ने विजया को अपनी गोद में ले लिया। अपने कन्धे पर उन्होंने विजया का सिर टिका दिया। वे अपने हाथ से विजया की पीठ थपथपाने लगीं। बोलीं : 'आ-हा-हा! सो जाओ, मेरे शेर! सो जाओ, मेरी बिटिया।'

तुरन्त ही विजया ने रोना बन्द कर दिया और वह सो गई।

दादी माँ ने कहा : 'यह न तो मचल रही थी, न ज़िद ही कर रही थी। इसको तो नींद आ रही थी, और इसीलिए यह रो रही थी। शाम को जब बच्चों को नींद आने लगती है, तो वे रोना शुरू कर देते हैं। वे दूध पीना चाहें, तो थोड़ा दूध पिलाकर उनको इस तरह कन्धे पर लेकर सुला दें, तो वे सो जाते हैं।'

: 2 :

पढ़ा, पढ़ा, भला, तुम क्या पढ़ोगे?

बालक हाथ में एक बड़ी किताब लेकर क,प,ड,च, जैसे अक्षरों को पढ़ रहा है। उसने कुछ नए अक्षर सीख लिए हैं, इसलिए उसके मन में पढ़ने की बड़ी उमंग है। किताब बड़ी हो, चाहे छोटी हो, अक्षर पढ़ने के लिए तो दोनों उसके मन बराबर ही हैं।

बालक बोला : 'पिताजी! मैं पढ़ रहा हूँ।'

बालक क्या पढ़ रहा है, इसको जाने-समझे बिना ही पिताजी ने कहा : 'पढ़ा, पढ़ा, भला, तुम क्या पढ़ोगे?' पढ़ने के लिए इतनी बड़ी किताब क्यों ली है? जाओ, 'बाल पोथी' पढ़ो!'

❀ ❀ ❀

बालक अपने पिता से कहता है : 'पिताजी! चलिए, देखिए, वह छिपकली उस पतंगे को खा रही है! देखने लायक है। चलिए, चलिए; नई चीज़ है। देख लीजिए।'

पिताजी के लिए इसमें कोई चमत्कार था नहीं। बालक के लिए तो सब कुछ नया ही था। बालक अपने पिता को ले जाकर अपने नए ज्ञान के आनन्द

में उनको अपना भागीदार बनाना चाहता है। पिता के लिए ता यह युगों पुरानी बात है।

पिता बोले : 'भई, इसमें देखना ही क्या है? छिपकली तो पतंगे को ही खाएगी न? तुम कौन बड़े अचम्भे की बात कहने आए हो! जाओ, अपना सबक़ याद करो, सबक़!'

❀ ❀ ❀

इस तरह अकसर हम अपने बालकों को दुतकार और फटकार देते हैं। उनके मन की बात को समझे बिना उनकी टीका-टिप्पणी करने लगते हैं। उनके बारे में न कहने लायक बातें भी कहते हैं। उनका अपमान करते हैं। उनको अपनी सहानुभूति नहीं देते। उलटे, उनके और अपने बीच ग़लत-फहमी पैदा कर लेते हैं। फासला बढ़ा लेते हैं। थोड़ा समय निकालकर, तनिक बालक की निगाह से सब कुछ देखकर, हम उसके आनन्द में सहभागी बनेंगे, हम उसको अपनी सहानुभूति देंगे, तो हम अपने बालक के अन्तर को अधिक सुखी बना सकेंगे, उसको अपने अधिक निकट ला सकेंगे, और उसको अधिक अपना बना सकेंगे।

: 3 :

गज्जू

'सुनते हैं? इस गज्जू को आप यहाँ से उठा ले जाएँगे?'

'क्या बात है?'

'स्नानघर में घुसकर यह बड़ी देर से पानी गिरा रहा है।'

'भले गिराता रहे।'

'लेकिन यह तो अपना कुरता गीला करके उसको गन्दा कर रहा है।'

'तो इसमें हर्ज ही क्या है? कुरता धुल जाएगा।'

'लेकिन यह बीमार जो हो जाएगा? क्या दिन-भर पानी के साथ खेलते रहना अच्छा है?'

'गिरमियों के दिन हैं। वह बीमार नहीं पड़ेगा। गिरमियों में बच्चों को पानी अच्छा लगता है।'

'लेकिन उसका इस तरह पानी गिराते रहना मुझको पसन्द नहीं है। वह दो बालटी पानी तो गिरा भी चुका है।'

'भई, पानी की कौन कमी है? नल तो सारे दिन चलता ही रहता है।'

'लेकिन इसने तो सारा स्नान-घर गीला कर डाला है। क्या गीला स्नान-घर अच्छा लगता है?'

'स्नान-घर तो अभी सूख जाएगा। गरमियों में देर ही कितनी लगती है?'

'पर इसका इस तरह पानी उड़ाते रहना मुझको अच्छा नहीं लग रहा। इस समय मेरे हाथ जूठे हैं। आप इसको यहाँ से हटाते हैं या नहीं?'

'उसको पानी के साथ खेलने दो न! तुम्हारा उसमें क्या बिगड़ता है?'

'यहाँ बैठी-बैठी मैं तो बेचैन हो रही हूँ। यह बड़ी देर से पानी उड़ा रहा है, और मेरे सिर के पास ही खड़खड़ाहट-भरी आवाज़ करता रहता है।'

'वह तो पानी के साथ खेल रहा है। छोटे बच्चों को पानी के साथ खेलना बहुत अच्छा लगता है। उसको अपनी मौज के साथ खेलने क्यों नहीं दे रही हो?'

'भला, पानी के साथ भी कोई खेल खेला जाता है? आप इसको खेल कह रहे हैं? इसमें कौनसा मजा है? गज्जू! तुम यहाँ से भागते हो या नहीं? मैं तुमको अपने इस बेलन से पीट दूँगी, समझे? आप इसको यहाँ से ले जाइए! अगर इसने मेरी बात नहीं सुनी, तो फिर मैं इससे निपट लूँगी। बाद में कोई मुझसे...'

'आखिर इसका उपाय क्या?'

: 4 :

बालकों की नज़रों में
कौआ ले गया!

जिन दिनों रमा छोटी थी, उन दिनों रमा की माँ को रमा की कोई चीज़ लेनी होती, तो वे ले लेतीं और कहतीं : 'कौआ ले गया! कौआ ले गया!'

रमा ने अपने अनुभव से 'कौआ ले गया।' का अर्थ खोज लिया होगा।

रमा अब चार साल की हुई है, और कमला दो साल की है। जब रमा को कमला की कोई चीज लेनी होती है, तो वह उससे ले लेती है, और कहती है : 'कौआ ले गया! कौआ ले गया।' लगता है कि धीरे-धीरे कमला ने भी 'कौआ ले गया!' का अर्थ खोज लिया है।

कल की बात है। घर में आलू रखे थे। कमला ने अपने फ्रॉक की झोली में कुछ आलू रख लिए और उनको इस तरह ढंक लिया कि कोई देख न सके। बाद में सब के सामने देखकर कमला ने कहा :'कौआ ले गया! कौआ ले गया!'

लगता है कि रमा अपनी माँ से ठगी नहीं गई, और कमला भी रमा से ठगी नहीं गई। दोनों ने समझ लिया कि 'कौआ ले गया' का मतलब है, छिपा दिया।

छिपा देने का यह खेल बड़ा दिलचस्प है।

: 5 :

खबरदार! मेरी मां को मालूम न हो!

'भैया, कानजी! तुम क्या खा रहे हो?'

'मैं मुरमुरे खा रहा हूं।'

'तुम मुझको मेरा हिस्सा नहीं दोगे?'

'मेरी मां ने मना किया है।'

'किसलिए मना किया है?'

'कल तुम्हारी मां ने मेरी मां को जामन नहीं दिया था न?'

'लेकिन मैं तो तुमको तुम्हारा हिस्सा देती हूं न? मैं कब इन्कार करती हूं?'

'तो लो, मैं भी इन्कार नहीं कर रहा। पर मेरी मां को पता नहीं चलना चाहिए, समझी? मां को पता चल गया, तो वे मुझ पर नाराज होंगी और कहेंगी : 'मैंने तो मना किया था, फिर भी तुमने क्यों दिया?'

: 6 :

लेकिन मेरी मां से कहो न!

'भैया लछमन! तुम वहां अकेले-अकेले रसोईघर में क्या कर रहे थे?'

'कुछ भी तो नहीं।'

'कुछ भी क्यों नहीं? कुछ खा तो रहे थे न? तुम्हारी ये मूंछें दूध में भीगी हैं। क्या तुम दूध नहीं पी रहे थे?'

'हां, मां ने मुझको कहा था कि मैं चुपचाप जाऊं और दूध पी लूं। यहां मेहमानों के इतने ज्यादा बच्चे इकट्ठा हुए हैं कि उनके लिए दूध कहां से लाया जाए?'

'लेकिन क्या इस तरह सबको छोड़कर दूध पीना अच्छा है?'

'भई, यह बात तो तुम मेरी मां से कहो। उन्होंने मुझको कहा था।'

: 7 :

पाप लगता है

नाई और मुन्नी के बीच चल रही बातचीत की तरफ मेरा ध्यान अचानक ही चला गया।

नाई ने कहा : 'झूठ बोलने से पाप लगता है।'

मुन्नी बोली : 'भले ही पाप लगे, मैं तो झूठ बोलूंगी।'

नाई ने कहा : 'बिटिया! झूठ बोलना ठीक नहीं। उससे पाप लगता है।'

मुन्नी बोली : 'लगता है, तो लगा करे। मैं तो झूठ बोलूंगी, झूठ बोला जा सकता है।'

नाई ने कहा : 'बेटी! झूठ मत बोलो। झूठ बोलने से पाप लगता है।'

मुन्नी ने पूछा : 'गिजुभाई! क्या सच ही झूठ बोलने से पाप लगता है?'

कुछ कहने की मेरी इच्छा बनी नहीं। मैं बोला नहीं।

मुन्नी ने नाई से पूछा : 'क्या झूठ बोलने से हम मर जाते हैं ?'

नाई ने कहा : 'हम झूठ बोलते हैं, तो हमको पाप लगता है।'

मुन्नी ने मेरी तरफ देखकर कहा : 'क्या झूठ बोलने से हम मर जाते हैं ?'

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

मुन्नी ने पूछा : 'पाप किस तरह लगता है ?'

नाई बोला : 'पाप लगता है। झूठ नहीं बोलना चाहिए।'

मुन्नी बोली : 'तब तो अब एक बार पाप लगा ही लेना होगा।'

❀

क्या नाई को धार्मिक शिक्षा देने से रोकना हमारा काम नहीं है ?

❀

दूसरे दिन मैंने मुन्नी से पूछा : 'तुम पाप कैसे लगवाओगी ?'

मुन्नी बोली : 'एक बार झूठ बोलूंगी, तो पाप लग जाएगा।'

: 8 :
लेकिन... ?

मेरे पड़ोसी के ओसारे से लड़के के रोने की आवाज आई। बाहर जाकर देखा, तो पता चला कि वे अपने लड़के को मार-पीट कर पाठशाला ले जाने की कोशिश में लगे थे।

मैंने पूछा : 'भैया आप अपने इस बच्चे को इस बुरी तरह क्यों पीट रहे हैं ? कहीं यह मर न जाए !'

जवाब मिला : 'भाई मैं इसको मारूं नहीं, तो और क्या करूं ? यह तो रोज का ही तमाशा है। पाठशाला का समय हुआ नहीं कि रूठना और मचलना शुरू किया नहीं।'

'लेकिन कारण क्या है ? पाठशाला जाने में रुकावट क्या है ?'

'भला, रुकावट क्या हो सकती है ? शिक्षक तो बेचारे बहुत ही भले आदमी हैं ! पर यह लड़का ही बहुत लड़ैता हो गया है। इसकी माँ ने इसको बिगाड़ दिया है। वे इसको खिलाती-पिलाती हैं, पहनाती-ओढ़ाती हैं, नचाती-कुदाती हैं। बस, जैसा यह कहता है, वैसा वे करती रहती हैं। फिर भला, यह क्यों किसी की परवाह करने लगा ? अपनी माँ को छोड़कर यह कहीं जाना ही नहीं चाहता।'

मैंने सोचा कि लड़के की हाजिरी में ज्यादा बात न करना ही ठीक है, इसलिए मैं कुछ बोला नहीं।

मेरे पड़ोसी ने लड़के को दो तमाचे जड़ दिए, और फिर उसको घसीटते हुए वे पाठशाला की तरफ चले। मैं भी उनके साथ हो गया।

पाठशाला पहुँच कर उन्होंने लड़के को शिक्षक के सुपुर्द कर दिया। शिक्षक ने भी समुचित गम्भीरता के साथ, समयानुकूल आवाज़ में, सख्ती-भरी आँख से लड़के को अपने ताबे में ले लिया।

मैंने देखा कि मेरे पड़ोसी ने निश्चिन्तता की साँस ली। जब वे बाहर आए, तो उनके चेहरे पर ख़ुशी छाई हुई थी।

घर लौटते समय मैंने उनसे पूछा : 'लेकिन मारने-पीटने से क्या हासिल होगा ?

वे बोले : 'भैया, बिना पाठशाला भेजे काम कैसे चलेगा ? अपनी मरज़ी से तो वह कोई काम करता ही नहीं है। एक क़दम भी तो नहीं उठाता। बनिये का बेटा है। कहीं चोरी करने तो नहीं न जाएगा ? पढ़ नहीं पाया, तो ब्राह्मण की तरह आटा माँगने कैसे जा सकेगा ?'

मैं बोला : 'भैया ! थोड़ी दया रखा करो !'

उन्होंने कहा : 'दया तो डाकिन को भी खा जाती है। हमने इसको बहुत ऊँचा-नीचा समझाया, पर इसने हमारी एक न सुनी। बस, यह तो मार-पीट के ही लायक रह गया है।'

मैं बोला : 'भाई, मारते रहने से तो बच्चा दब्बू बन जाएगा।

उन्होंने कहा : 'कोई दब्बू बनता नहीं है। हम भी मार खा-खा कर ही तो बड़े हुए हैं ! यह तो मार खा-खा कर अब पक्का बन गया है। जब मैं छोटा था, तो मैं भी रूठा और भागा करता था। लेकिन एक दिन पिताजी ने दातौन की सोटी से जो पीटा, तो सारी अक़्ल ठिकाने आ गई।'

मैंने पूछा : 'अगर पाठशाला जाने के बाद भी उसने वहाँ पढ़ाई नहीं की, तो क्या होगा ?'

वे बोले : 'भला, पढ़ाई क्यों नहीं करेगा ? वहाँ तो अपने शिक्षक की गुस्से-भरी आँखें देख कर बच्चा मूत देता है। उसका नाटक तो घर में ही चलता है। कान तो पराई माँ ही बींधती है। वहाँ कोई फूहड़ बनियानी नहीं रहती कि अन्धेर नगरी की-सी हालत बनी रहे। वहाँ तो वह भीगी बिल्ली की तरह दबकर ही रहता है।'

मैंने कहा : 'आप उसको समझा-बुझाकर और फुसला-पटाकर पाठशाला क्यों नहीं ले जाते ?'

वे बोले : 'आप फुसलाने की बात कहते हैं। अजी, वह तो आपको और मुझको और अपने शिक्षक को और सबको बेचकर मौज मनाने वाला जीव है ! उसकी आदतें बहुत बिगड़ गई हैं। अगर वह सबकी सुने और माने, तो उसको न तो कुछ कहना ही पड़े, और न मारने-पीटने की ही नौबत आए। भला, अपने बेटे को मारने-पीटने में किसी को क्या सुख मिल सकता है ? उसकी यह माँ क्या जाने कि लड़का पढ़ेगा नहीं, तो आवारा बनकर मारा-मारा फिरेगा ?'

मैं तो अपना सिर ही हिला सकता था। आखिर माँ के इस लाड़ का उपाय क्या ?

जहाँ शिक्षक अपनी आँखें तरेर कर विद्यार्थी को सही रास्ते पर लाएँ, और जहाँ मेरे इन पड़ोसी के समान पिता अपने लड़के को तमाचे मार-मार कर उसका भविष्य सुधारना चाहें, वहाँ किसी और का क्या ज़ोर चले ? बेशक, बच्चे का भला तो सब ही चाहते हैं।

लेकिन·········?

मैं खिन्न मन के साथ अपने घर पहुँचा।

लेकिन·········?

: 9 :

गुस्से की हालत में हम और क्या करें ?

'कहिए आपने 'शिक्षण-पत्रिका' पढ़ी ?'

'जी, पढ़ी तो सही, पर उसमें मेरा मन नहीं लगा।'

'माँ-बाप अपने बच्चों को किसलिए मारते-पीटते हैं, इसकी चर्चा वाला लेख आपने पढ़ा ?'

'पर भैया, बिना मारे काम कैसे चले ? आप देखिए, इस लड़के ने अपना यह पैर तोड़ लिया। अब इस पर हम को गुस्सा न आए, तो और क्या हो ? ऐसी हालत में तो इनकी अच्छी पिटाई ही होनी चाहिए न ?'

'लेकिन यह तो गिरे हुए को लात मारने-जैसी बात हुई !'

'पर भैया ! गुस्से की हालत में हम और क्या करें ?'

: 10 :

रमेश को क्यों मारा ?

'रमेश, तुम क्यों रो रहे हो ?'

'मेरी माँ ने मुझ को मारा।'

'क्यों मारा ?'

'मैं नहीं जानता कि उन्होंने मुझ को क्यों मारा।'

'पर कुछ हुआ तो होगा न ?'

'बस, यों ही, मेरा कोई कसूर न होते हुए भी मारा !'

'लेकिन कोई बात हुई तो होगी न ? तुमने कोई ऊधम मचाया होगा।'

'ऊधम की बात मैं नहीं जानता। पर माँ जब रसोई बना रही थीं, मैंने उनसे पूछा : 'माँ, मेरी टोपी कहाँ है ?' माँ सँड़ासी से ताई पकड़ कर उसको

चूल्हे पर रखने जा रही थीं कि यह उनके हाथ से छूट गई। इस पर माँ नाराज़ हो गईं और मुझ से कहने लगीं : 'कम्बख्त, तुम इसी तरह मुझ को परेशान करते रहते हो ! लो, अब यह ताई फूट गई ! अब मैं रोटी कैसे बनाऊँ ? यों कहते हुए उन्होंने मुझ को एक धप्पा मार दिया।'

: 11 :

तुम रवि को क्यों मार रहे हो ?

माँ : 'रमेश ! तुम रवि को क्यों मार रहे हो ?'

रमेश : 'इसलिए कि तुम मुझको मार रहीं थीं।'

: 12 :

दो रीतियाँ

(1)

आहा ! तुम खेल कर आ गईं ? आज तुमने कौन-कौन से खेल खेले ? सुनो, अब ज़रा देर के लिए मेरे काम में मदद करोगी ? यहाँ यह जो जूठन पड़ी है, इसको तुम साफ कर लो। इसी बीच मैं साग सँवार लेती हूँ। फिर तुम इन धुले हुए कपड़ों को समेट लेना। बाद में हम घूमने चलेंगी। क्या आज तुमको कोई सबक़ दिया है ? रात ब्यालू के बाद तुम अपना सबक़ जल्दी ही तैयार कर लेना। फिर सुबह के लिए हम थोड़ी दाल बीन लेंगी। पहले तुम अपना सबक़ तैयार कर लेना, जिससे तुमको थोड़ी फ़ुरसत और आराम मिल जाए।

(2)

अब तुम घूम-भटक कर आई हो ! न काम, न काज, बस, सारा दिन घूमना, घूमना और घूमना ! लो, अब यह जूठन साफ करो। सुबह से अब तक घर की सफाई नहीं हुई है। घर में झाड़ू कौन लगाएगा ? देखो, ये कपड़े कैसे फैले हुए हैं। इनको जरा समेट कर तो रख दो। बस, तुम एक पढ़ना जानती हो, और पट-पट जवाब देना सीख गई हो ! मुझको तुम्हारी यह पढ़ाई नहीं चाहिए। पढ़कर तुमको कौन अपनी रोटी कमानी है या बच्चों को पढ़ाने जाना है ? कल से पढ़ने मत जाना। और जाना ही हो, तो पहले घर का काम और बाद में पढ़ाई !

: 13 :

रात का आनन्द

बाबूजी बाज़ार से घर आए हैं। उनको आया देखकर घर के नन्हें बच्चे उनको घेर कर खड़े हो जाते हैं।

पूछते हैं : 'बाबूजी ! आप बाज़ार से क्या-क्या लाए हैं ? मेरे लिए गन्ना तो लाए ही होंगे ? और, मेरे लिए लड्डू भी लाए होंगे ?'

बाबूजी अपना छाता और अपने जूते एक तरफ रख देते हैं। फिर सिर पर पहनी पगड़ी उतारकर पसीना पोंछते हैं। बाद में अपने दुपट्टे के पल्ले में बँधी पोटली खोलते हैं। बच्चे हँसते-मुस्कुराते हुए अमरूद खाने लगते हैं। नन्हा रमेश लट्टू लेकर उससे खेलने लगता है। बड़का विनोद लपककर नई बाल पोथी ले लेता है, और उसको पढ़ने लगता है। तभी नन्हीं मुन्नी अपने लिए लाया गया फ्रॉक लेकर रसोईघर की तरफ भागती है, और वहाँ काम कर रही अपनी माँ को अपना नया फ्रॉक दिखाती है।

रात के भोजन के बाद माँ कहती हैं ! 'अब तुम सब यहाँ आ जाओ। आओ, हम कहानी सुनेंगे।'

मुन्नी बीच में बैठती है। बाक़ी के सब बच्चे उसको घेर कर बैठ जाते हैं।

माँ कहानी शुरू करती हैं :

'एक था राजा।

खाता था खाजा।

घी थोड़ा।

मटका फोड़ा।' सुनकर सब बच्चे खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं।

रश्मि ने कहा : 'मां ? 'बुढ़िया किसकी ?' वाली वह कहानी सुनाइए न ?'

मां ने आस्ते-आस्ते कहना शुरू किया—

'एक थी बुढ़िया।'

क्षण भर के लिए सब बच्चे चुपचाप हो गए। सब एकटक मां की तरफ देखने लगे। अपनी आंखों की पलकें झपकाना भी किसी को पसन्द नहीं

था। सब सोच रहे थे कि बुढ़िया का क्या हुआ? इस बीच बुढ़िया धमाके की-सी एक आवाज करके अपनी बैठक के नीचे फ़ैली राख को जोर से उड़ा देती है। सब बच्चे एक साथ ठहाका मार कर हंसने लगते हैं, और उनमें से कोई मां की गोद में लोट जाता है, तो कोई मां के गले लिपट जाता है, और कोई मां के कन्धों पर चढ़ जाता है। कहानी के मीठे नशे में बालकों की आंखें नींद से भारी हो उठती हैं और एक के बाद एक सभी बच्चे गहरी नींद में डूब जाते हैं। उनके नींद भरे चेहरों पर बुढ़िया की कहानी के मजे की निशानियां साफ-साफ झलकने लगती हैं।

: 14 :

बारिश का मजा

पानी बरस रहा है। नेवतों में पानी समा नहीं रहा है। आंगन में पानी का तालाब भर गया है। पानी कभी जोर से बरसता है, तो कभी धीमा पड़ जाता है। और कभी तो ऐसी झड़ी लगती है कि पूछिए न बात!

भानु: 'पिताजी! मैं और नन्दू दोनों इस बारिश में नहा लें?'

पिताजी: 'हां-हां, जाओ और इस बरसते पानी में तुम दोनों नाच-कूदकर नहा लो।'

दोनों ने छलांग लगाई और वे नहाने लगे। उनको नहाते देखकर पास-पड़ोस के लड़के भी आ गए और गाने लगे।

'आवरे वरसाद, घेवरियो परसाद,
ऊनी-ऊनी रोटली, ने कारेलानुं शाक,
आवरे वरसाद, नेवले पाणी,
नठारी छोकरी देडके ताणी।'*

---

*बारिश आओ, घेवर का परसाद लाओ।
गरम-गरम रोटी, करेले का साग खाओ॥
बारिश आओ, नेवतों में पानी। नटखट लड़की, मेंढक ने तानी॥
— अनुवादक

सब नेवतों के पानी से नहाए, गड्ढों में कूद-फांद आए, हवा के सामने चले, बरसते पानी में दौड़े, खूब-खूब नहाए, जी-भरकर नहाए। देर तक नहाते ही रहे।

पिताजी ने पुकारा: 'सुनो, अब तुमको ठण्ड लगने लगी होगी। सब घर के अन्दर आ जाओ, बदन पोंछलो और सिगड़ी के पास बैठ जाओ।'

सब सिगड़ी के पास आकर बैठ गए और ठण्ड को इस तरह भगा दिया कि फिर गरम हो उठे, सिगड़ी की तरह गरम।

विजय ने पूछा: 'पिताजी! जब मैं बड़ा हो जाऊंगा, तो आप मुझको भी नहाने के लिए जाने देंगे न?'

चन्दन बोला: 'पिताजी! कल मेरी बारी लगेगी।'

विष्णु ने कहा: 'अपने राम तो बारिश के बाद ही बाहर निकलेंगे।

बरसात की बातें बड़ी देर तक चलती रहीं। बरसात की, हवा की, मेंढक की, नदी की और न जाने किन-किन की बातें चलीं। पिताजी ने बरसात का पूरा महाभारत सुना दिया।

: 15 :

ऊँ...ऊँ...ऊँ

1

ऊँ...ऊँ...ऊँ...
क्या हुआ?
गिर पड़ी।
कहां से?
झूले पर से।
कुछ लगी?
हां, चोट लगी।
फिर झूले पर बैठोगी?
हां, बैठूंगी।
तो उठो।

2

ऊँ....ऊँ...ऊँ...
क्या हुआ?
छुरी लग गई?
कैसे लगी?
सांग संवार रहा था।
कम्बख्त, मैंने तुमको मना किया था न?
ऊँ...ऊँ...ऊँ...
रोते क्यों हो?
हाथ काट लिया।
शरम नहीं आती?

जोर से झूला चला दिया।

छुरी एक तरफ रख दो।
खबरदार ! आगे कभी छुरी
हाथ में मत लेना !

3

ऊँ...ऊँ...ऊँ...
रोते-रोते क्यों आए ?
रजनी ने मुझको मारा।
कोई बात नहीं।
खेल में तो लग ही जाती है।
इसमें रोना क्या ?

4

ऊँ...ऊँ...ऊँ...
रोते-रोते क्यों आए ?
मनु ने मुझको गिरा दिया।
तुमने उसको क्यों नहीं गिराया ?
नामर्द कहीं के !

: 16 :

माँ ने मुझ को मारा !

'चम्पा बहन ! आज तुम कुछ नाराज़-सी लग रही हो। बोलती क्यों नहीं हो ?'

वैसे, चम्पा बहन बहुत खुश मिज़ाज है। विद्यालय आते ही कहती हैं : 'नमस्कार ! नमस्कार ! ! पास आकर लिपट जाती हैं। आँखों में न जाने कितना प्रेम भरा होता है।

लेकिन आज चम्पा बहन गुपचुप आईं, और गुम-सुम-सी होकर एक कोने में बैठ गईं।

'चम्पा बहन ! कहो न, आज तुमको क्या हो गया है ?'

'चम्पा बहन का दिल भर आया। होंठ कुछ हिले। मुँह लाल हो उठा। आँखों से टप्-टप् आँसू टपकने लगे।

मैंने चम्पा बहन के सिर पर धीमे से अपना हाथ फेरा, और उनको अपने पास बैठा कर पूछा : 'चम्पा बहन ! कहो न, आज तुम रो क्यों रही हो ?'

'आज माँ ने मुझ को मारा !'

'किस लिए मारा ?'

'मेरा कोई कसूर नहीं था, फिर भी मारा।'

'पर बात क्या हुई थी ?'

'बात यह हुई कि मैं अपने छोटे भाई को अपनी गोद में लेना चाहती थी। जब मैं उसको पालने में से उठाने लगी, तो वह रोने लगा। माँ दौड़कर आईं और बोलीं : 'तुमने इसको क्यों रुलाया ? और मुझ को एक घूँसा जमा दिया।'

मैंने कहा : 'चम्पा बहन, इसको भूल जाओ !'

मेरा मन बहुत दुःखी हो उठा। मैं मन मसोस कर रह गया। भला, चम्पा बहन से मैं यह कैसे कहता कि तुम्हारी माँ कुछ समझती नहीं हैं ?

: 17 :

झूठा कौन ?

'कमला काकी ! क्या चुटकी-भर चने का आटा है ? मेरी माँ को कढ़ी में डालने के लिए चाहिए।'

'बेटे, बेसन तो कल ही चुक गया था। अब तो एक चुटकी भी बचा नहीं है।'

लक्ष्मी बोली : 'माँ उस पायली में थोड़ा बेसन रखा तो है।'

माँ ने तपी हुई आवाज़ में कहा : 'अभागिन, उतना तो हमको अपने लिए चाहिए न ? आज कढ़ी कैसे बनेगी ?'

लक्ष्मी : 'लेकिन तुमने यह क्यों कहा कि बेसन नहीं है ?'

: 18 :

ओ माँ ! धुला दो न ?

'माँ, ओ माँ ! मैं पाखाने जाकर आया हूँ। मुझ को धुला दो न ?'

'अहो' अब मैं कब तक धुलाती रहूँ ? तुम इतने बड़े हो गए हो, फिर भी अपने हाथों धोना नहीं सीख पाए।'

'तुम कहो, तो मैं खुद ही धो लूँ।'

'भला, मैं तुमको क्या कहूँ ? तुम धोना जानते कहाँ हो ?

'लेकिन जब तुम मुझ को धोने ही नहीं देतीं, मैं धोना सीखूं कैसे ?'

'पर तुम धोना जानो, तभी न मैं तुम को धोने दूं ?'

❀

ऐसी कई बातों को लेकर माँ-बापों और बच्चों के बीच झकझक चलती रहती है।

शुरू में माँ-बाप बच्चों को उनके हाथों काम करने नहीं देते, इसलिए उनको बच्चों के काम करने पड़ते हैं। जब बच्चा बड़ा हो जाता है, और वह काम करना जानता नहीं है, तो माँ-बाप को इसकी शिकायत बनी रहती है। हम सोचते हैं कि बच्चा इतना बड़ा हो गया, फिर भी वह अपना काम क्यों नहीं कर पाता है ? लेकिन बच्चा चाहे बड़ा हो जाए, पर काम किए बिना तो वह काम करना कैसे जानेगा ? बचपन में यह मानकर कि बालक खुद कोई काम कर नहीं सकता, इसलिए हम उसको काम करने नहीं देते। जब बच्चा बड़ा हो जाता है, और उसको काम करना नहीं आता, तो हम उस पर गुस्सा होने लगते हैं। सच तो यह है कि हम बचपन से ही बालक को काम करने के मौके दें। सच है कि बचपन में बालक हमारी तरह सब प्रकार के काम भली भाँति कर नहीं सकता। लेकिन हम बड़ी उमर के लोग जो काम आज फुरती के साथ अच्छी तरह कर लेते हैं, उनको हम अपने बचपन से ही तो नहीं करने लगे थे ? धीरे-धीरे काम करते-करते ही हम अच्छा काम करने लगे हैं।

अब तो माँ अपने बेटे को उसके हाथों ही धोने देगी, तो कुछ ही दिनों में वह अच्छी तरह धोना सीख जाएगा।

: 19 :

आप क्या समझें ?

'भला, बालकों के लालन-पालन के बारे में आप क्या समझती हैं ? इसका सच्चा अनुभव तो मुझको है।'

अच्छी बात है। भला, बताइए कि आपने कितने बालकों को पाल-पोस कर बड़ा किया है ?'

'आप कितने की बात पूछते हैं ! मैंने एक नहीं, दो नहीं, नौ-नौ बच्चों को पाला है !'

'भला, इन में कितने बच्चे पल-पुसकर बड़े हुए हैं ?'

'दो !'

: 20 :

रहने दो, दूधी ! रहने दो !

मेरे घर के पास एक कोलिन रहती थी। उसके एक बेटी थी। नाम था, दूधी। दोपहर में थकी-माँदी कोलिन अपनी टूटी खटिया पर लेट कर थोड़ा आराम करती। अपनी आँखों पर उतरे बोझ को थोड़ा उतार देने के बाद, बेचारी कोलिन को फिर या तो घास लेने जाना पड़ता था, या गोबर लाना होता था। दूधी को नींद आती नहीं थी। उसके पास ऐसा काम ही कौन-सा था कि वह थकती ? उसको सारे दिन खेलते रहना था। माँ को थोड़ी झपकी लगती कि इतने में खेलते-खेलते दूधी बरतन उठाने और पटकने लगती। माँ कहती : 'रहने दो, दूधी ! रहने दो !'

दूधी उस काम को छोड़ कर उपले पाथने बैठ जाती, तो माँ कहती : 'रहने दो, दूधी ! रहने दो !'

दूधी उस काम को वहीं छोड़ देती। फिर कोई खूंटा उसके हाथ में आ जाता, तो आँगन में बैठ कर उससे ज़मीन खोदने लगती। माँ कहती : 'रहने दो, दूधी ! रहने दो !'

दूधी वहाँ से उठकर दरवाज़े के पास पहुँचती, और उसके एक पल्ले से लटक कर झूला झूलने का आनन्द लेती। माँ कहती : 'रहने दो, दूधी ! रहने दो !'

दूधी वहाँ से हट कर कुछ दूर चली जाती, और कंकर उछालने लगती। कंकर उछल कर टिन की चादर पर गिरते और चादर झनझना उठती। माँ कहती : 'रहने दो, दूधी ! रहने दो !'

बेचारी माँ आँखें मलती हुई उठती और कहती : 'यह दूधी भी अजीब ही है ! इसने मुझको ज़रा देर के लिए भी सोने नहीं दिया।'

मैंने कहा : 'पूरी बहन ! यह दूधी आपको ऐसे कैसे सोने देगी ? दिन में थोड़ा सो लेना आपके लिए जितना जरूरी है, दूधी के लिए दिन में खेलते रहना भी उतना ही ज़रूरी है। या तो दोपहर में आप दूधी को मेरे आँगन में छोड़ दिया कीजिए, या फिर अपने घर में ही आप उसको दो-चार ऐसे काम सौंप दीजिए कि जिससे आपको बार-बार 'रहने दो, दूधी ! रहने दो !' कहना ही न पड़े। आप दूधी को सब तरह के काम करने से रोकती रहेंगी, तो आखिर दूधी क्या करेगी ? ऐसी हालत में दूधी के हाथ में जो काम आ जाए, उसको वह करती रहे, और आपको नींद न आए, तो इसमें अचरज ही क्या है ? आप अपनी दूधी से कहिए : 'बेटी दूधी ! अब मैं थोड़ी देर के लिए सो रही हूँ। तुम इन गेहुओं में से कंकर बीनती रहना, या थोडी दूर जाकर जो खेल तुमको खेलना हो, तुम इस तरह खेलना कि तुम्हारी आवाज़ मुझ तक न पहुँचे।' एक बार यह तय हो जाने पर कि दूधी को क्या खेलना है और क्या करना है, उसको खाली बैठना नहीं पड़ेगा। और बार-बार की 'रहने दो, रहने दो !' वाली आवाज़ के बन्द हो जाने से दूधी को भी खेलने का आनन्द लूटे बिना ही अपने कई खेल या काम बन्द नहीं करने पड़ेंगे। आप थोड़े समय के लिए आराम से सो सकेंगी, और दूधी को खेलते रहने की सुविधा मिल जाएगी, तो वह भी गड़बड़ नहीं करेगी। आपको पूरा आराम मिल सकेगा, और दूधी मस्त बनकर खेलती रहेगी।'

दूसरे दिन से पूरी बहन कोलिन के मुँह से 'रहने दो, रहने दो।' की आवाज़ नहीं निकली। अब न दूधी अपने घर के दरवाज़े पेर लटक कर चूँ-चूँ की आवाज़ करती है, और न उसकी माँ की नींद ही खराब होती है। माँ खटिया में पड़ी-पड़ी मीठी नींद लेती रहती है, और बेटी दूर के एक कोने में बैठकर चुपचाप कोई-न-कोई खेल खेलती रहती है।

: 21 :

सब कुछ भाना चाहिए

'बेटे, तुम मेरे मुँह की तरफ देखते हुए बैठे क्यों हो ? खाते क्यों नहीं हो ? रोज़-रोज़ की यह किचकिच अच्छी नहीं। दाल बनाती हूँ, तो कहते हो, साग अच्छा लगता है। साग बनाती हूँ, तो कहते हो, दाल भाती है। इसमें भाने और न भाने की बात ही क्या है ? सब कुछ भाना ही चाहिए।'

'लेकिन यह इतनी तीखी दाल मैं कैसे खाऊँ ?'

'दाल इतनी तीखी है ही कहाँ ?'

'तो माँ, तुम ही चखकर देख लो कि यह कितनी तीखी है ?'

'मोहन ! तुम उठो। मेरे सामने से हट जाओ ! तुम मेरे साथ मुँह जोरी करते हो ? सुबह दस बजते-बजते इतने बढ़िया दाल-भात बनाकर देती हूँ, तो तुम को ये भाते नहीं हैं ! कोई दूसरी माँ होती, तो पता चलता !'

'माँ, मैं तो यह कह रहा हूँ कि मुझको यह दाल थोड़ी तीखी लग रही है, और करेले का यह साग भाता नहीं है।'

'और किसी को तो यह तीखी लगी नहीं, तुम्हीं को तीखी क्यों लग रही है ? करेले का साग भी खाना होता है। जो भी बनाया है, उसको फेंका तो नहीं जा सकता न ?'

बेचारा मोहन धीमे-धीमे साग और रोटी खा रहा है। तीखी दाल में थोड़ी अँगुली डुबोता है और खाता जाता है। माँ गुस्सा होकर कहती हैं : 'दस साल की उमर हो गई ! तुम दाल तक खाना नहीं जानते ? खाते समय कभी अँगुली भी नहीं डुबोते और कभी ऐसे खाते हो कि रेले बहने लगते हैं ! सविता बहन, ज़रा देखिए तो ! यह मोहन कहता है कि इसको खाना नहीं भाता। आप ही बताइए कि मैं इसके लिए नित नए मेवे कहाँ से लाऊँ ?'

सविता बहन बोलीं : 'बहन, अभी तो यह बच्चा ही है। आप इसको खाते समय क्यों रुला रही हैं ?'

माँ ने कहा : 'नहीं, इसकी तो यह आदत ही पड़ गई है ! रोज़ कहता है, 'यह नहीं भाता और वह नहीं भाता।' क्या लोग रोज़-रोज़ सोना काट कर खाते हैं ?'

मोहन बोला : 'मौसी ! आप ही चखकर देखिए, यह दाल तीखी है या नहीं ?'

माँ गरज कर बोली : 'मोहन ! चुप रहो। नखरे मत करो।'

मोहन के सामने बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। एक तरफ तीखी दाल और कड़आ साग, और ऊपर से माँ की गालियाँ ! बेचारे को खाना भाए, तो कैसे भाए ?

: 22 :

आबाद बहन के बूट

देव-मन्दिर में आबाद बहन के बूट खो गए। आबाद बहन ने शान्त भाव से कहा : 'मेरे बूट खो गए।'

मैं बोला : 'कोई हर्ज नहीं।'

बाद में इस बात की पूछताछ करके कि बूट कहाँ रखे थे, और कहाँ रखे जाते, तो खोए न जाते, इसकी चर्चा करते हुए हम सब मन्दिर के बाहर आ गए।

रास्ते में नर्मदा बहन ने आबाद बहन से कहा : 'तुम फिकर मत करो। ऐसा तो होता ही रहता है।'

आबाद बहन का दिल ज़रा भी फड़फड़ा नहीं रहा था। वे रोई भी नहीं। उलटे, वे तो अपने सब साथी बच्चों के साथ उन्हीं की तरह ख़ुशी ख़ुशी चलने और दौड़ने लगीं।'

आमतौर पर ऐसे अवसरों पर बालक रोने लगते हैं। लेकिन आबाद बहन नहीं रोईं। मैं सोचता रहा कि ऐसा क्यों हुआ ?

काफी देर हो चुकी थी। हम सब आबाद बहन को उनके घर पहुँचाने गए। हमारे वहाँ पहुँचने से पहले ही बचु भाई ने जाकर कह दिया था : 'आबाद बहन के बूट खो गए हैं।'

आबाद बहन की मौसी माँ पिलांमायजी ने पूछा : 'कहाँ खो गए ?'

बचुभाई ने कहा : 'हम सब जशोनाथ मन्दिर में दर्शन करने गए थे। बूट वहीं खो गए।'

पिलांमायजी बोलीं : 'मैया फिकर की कोई बात नहीं। ऐसा तो होता ही रहता है !'

इतने में मैं उनके पास पहुँच गया। मैंने उनसे कहा : 'मायजी, हमको अपने बालमन्दिर के बालकों के लिए ऐसे ही माँ-बापों और सगे-सम्बन्धियों की आवश्यकता है।'

पिलांमायजी बोलीं : 'बूट की कोई फिकर नहीं। अपने इन बच्चों को सुखी देखकर मैं सुखी हो लेती हूँ !'

यों कहकर पिलांमायजी ने आबाद बहन की छाती पर अपना हाथ रखा और उनको अपने पास खींचकर प्यार से थपथपाया।

इससे मैं समझ सका कि आबाद बहन रास्ते में रोई क्यों नहीं। आबाद बहन को कभी यह अनुभव हुआ ही नहीं कि गलती से किसी चीज के खो जाने पर उलाहना मिलता है, या मार पड़ती है। अपना कुछ खोकर आने वाले बालक के मन की स्थिति का कोई खयाल आबाद बहन को था ही नहीं। इसके लिए धन्यवाद के अधिकारी कौन हैं ? उनके माता-पिता और उनकी मौसी माँ ही इस धन्यवाद के पात्र हैं !

दूसरी कोई मौसी या माँ होतीं, तो बूट तो ग़ायब हुए ही थे, तिस पर आबाद बहन की अच्छी पिटाई भी हो जाती !

काश, माता-पिता थोड़े समझदार हों !

: 23 :

रोने से बिच्छू नहीं उतरेगा

'हाय, हाय ! मरा रे, मरा ! काट लिया रे, काट लिया !'

'अरे ओ, अभागे ! तू मुँह से तो बोल कि तुझ को हुआ क्या है ? तू भागा-भागा क्यों घूम रहा है ?'

'हाय, हाय ! मर गया रे, मर गया !'

'है न अभागा ! मुंह से तो कुछ बोल ही नहीं रहा !'

'अरे, इसको तो बिच्छू ने काट लिया है। इसीलिए यह रो रहा है।'

'तो यह वहां गया ही क्यों था ? मैंने इसको कहा था कि उन लड़कों के साथ खेलने मत जाना। लेकिन यह अभागा मेरी बात सुनता ही कहां है ?'

'हाय, हाय ! ओफ्, ओफ् !

'तुम भले ही रोते रहो। मैं तो यह बैठी।'

'क्यों बेटे, तुम इतने चीखते-चिल्लाते क्यों हो ? तुमने तो सारे गांव को हैरानी में डाल दिया है।'

'इसको तो बिच्छू ने काटा है, बिच्छू ने !'

'भला, इसको बिच्छू क्यों नहीं काटेगा ? इसको तो मैंने भी कहा था कि उधर मत जाना।'

'लेकिन भैया, तुम्हारा यह लड़का बड़ी देर से रो रहा है। इसको दर्द हो रहा है। तुम इसका तो कोई इलाज करो।'

'भले ही रोता रहे। यह तो है ही इस लायक !'

बूढ़े बाबा श्यामजी पड़ोस से आए।

बोले : 'किसी के मन में कोई दया-माया रह गई है या नहीं ? यह लड़का चीख रहा है, इसको बिच्छू ने काट लिया है, और इसके मां-बाप गुमसुम खड़े देख रहे हैं।'

'दादाजी ! आप तो इस अभागे को खूब जानते हैं। यह कभी कहीं चुपचाप बैठता ही नहीं। सारा दिन इधर-उधर भटकता ही रहता है। रात के अंधेरे में वहां क्या गड़ा था कि यह उधर चला गया ?'

'बेटी, मैं तुम्हारी बात समझ गया। लेकिन अब इसकी कोई दवा तो करो। तुम इस बच्चे को अपने पास तो बुला लो। इस पेर थोड़ी तो दया तो दिखाओ।'

'दादाजी ! इस मामले में आप कुछ मत बोलिए। लड़का तो हमारा है न ? हम इसको चुप करेंगे।'

'कम्बख्त ! अब तुम चुप भी रहते हो या नहीं ?' मैं अभी तुमको बिच्छू उतारने वाले के पास ले चलती हूं। पर तुम अपना यह चीखना-चिल्लाना तो बन्द करो !'

'हाय, हाय ! ओफ्, ओफ् !'

'सुनो, ज़रा धीमी आवाज में रोओ ! तुम्हारे रोने से बिच्छू उतरेगा नहीं।'

: 24 :

चमचे का झगड़ा

'आज यह मुन्नी इतनी ज़िद क्यों कर रही है ?'

'बहन, मुन्नी तो बस, मुन्नी ही है ! जब तक यह मीठा-मीठा बोलती है, तब तक तो बहुत अच्छी लगती है। लेकिन जब यह रूठती और मचलती है, तो बहुत बेक़ाबू हो जाती है।'

'ऊँ···ऊँ···ऊँ।'

'मुन्नी ! तुम क्यों रो रही हो ? तुमको क्या हो गया है ?'

'ऊँ···ऊँ···ऊँ।'

'यह इस तरह नहीं बोलेगी। इस मामले में तो यह बहुत ही चतुर है।'

'मुन्नी, बिटिया, बोलो, क्या बात है ? तुम क्या चाहती हो ?'

'ऊँ···ऊँ···ऊँ।'

'अब तुम चुप भी रहोगी या नहीं ?'

'ऊँ···ऊँ···ऊँ।'

'भला, यह ऐसे कैसे चुप होगी ? इस तरह तो इन बच्चों में दुगुना जोश आ जाता है।'

'देखूं, एक बार और पूछ लूं। मुन्नी ! बोलो, क्या बात है ?' आओ मेरे पास आ जाओ। बोलो, तुम क्या कहना चाहती हो ?'

'ऊँ···ऊँ···ऊँ। तमता···'

'तमता ? यह तमता क्या चीज़ है ?'

'तमता···मेला···तमता !'

'भई, यह क्या माँग रही है ?'

'चमचे की ज़िद चढ़ी है।'

'लो, यह चमचा। तुमको यह चमचा ही चाहिए न ?'

'नहीं, यह नहीं।'

'तो कौन सा ?'

'बात यह है कि मैंने इससे चमचा मँगवाया था। चमचा लल्ली ले आई, इसलिए अब मुन्नी झगड़ा कर रही है।'

'अच्छा, यह बात है! मुन्नी बहन, तुम चमचा लाना चाहती थीं ?

'जी···हाँ।'

'तो तुम चमचा ले आओ। भला, तुमको मना कौन कर रहा है ? देखो, इस चमचे को मैं इसकी जगह पर वापस रख देता हूँ। अब तुम इसको लाओ और अपनी माँ को दो।' मुन्नी चमचा लेकर माँ के पास पहुँची और बोली : 'माँ, लो, यह तमता। तुमको तमता चाहिए न ?'

मुन्नी बहन का रोना बन्द हो गया और माँ को चमचा देकर वे खुश हो गई।

: 25 :

घड़ी खोल दीजिए न ?

(1)

'पिताजी, यह घड़ी खोल दीजिए न ?'

'लेकिन मैं यह घड़ी तुम्हारे हाथ में नहीं दूंगा। हो सकता है कि घड़ी गिर जाए और टूट जाए।'

'घड़ी आप अपने हाथ में ही रखिए। पर मुझको घड़ी के चक्र जरूर दिखा दीजिए।'

'लेकिन टीकू, इन चक्रों पर तुम अपनी अँगुली मत रखना, भला! अँगुली रखने से चक्र खराब हो सकते हैं।'

'मुझको मंजूर है। मैं अँगुली नहीं लगाऊँगा। मैं टीकू की तरह बच्चा तो हूँ नहीं।

'लेकिन घड़ी मैं कुछ ही देर के लिए दिखाऊँगा। अधिक देर तक खुली रहने पर उसमें कचरा गिर सकता है।'

'आपकी बात मानी। मुझको तो कुछ ही देर के लिए देखना है।'

'अच्छी बात है। तुम जरा खड़े रहो। मैं यह पत्र पूरा कर लूँ। इस बीच तुम चाकू ले आओ।'

'लीजिए, यह चाकू। अब घड़ी खोलिए।'

'तुम जरा दूर खड़े रहो। पूरा उजाला आने दो।'

'जी, मैं दूर खड़ा हो गया हूँ।'

'लो, देखो, ये चक्र हैं। कटकट की आवाज के साथ ये किस तरह चल रहे हैं। देखो, वह छोटा चक्र कितनी तेज गति से चल रहा है ? देखो, जरा आँख गड़ाकर देख लो। बस! देख लिए न ? अब हम घड़ी बन्द कर दें। मुझको दूसरे काम करने हैं।'

'अच्छी बात है। पिताजी, कल फिर दिखाएँगे न ?'

'कल की बात कल सोचेंगे।'

'बहुत ठीक।'

(2)

'पिताजी, यह घड़ी खोल दीजिए न ?'

'नहीं, यह घड़ी नहीं खुलेगी।'

'लेकिन यह खुलती तो है। कल आप इसको खोल तो रहे थे।'

'पर यह तुमको खोलकर नहीं दी जा सकती।'

'लेकिन मैं इसको बिगाड़ूँगा नहीं। टीकू की तरह मैं इस पर अपनी अँगुली नहीं रखूँगा।'

'पर खोलने से इसमें कचरा गिरेगा।'

'बस, थोड़ी देर देखकर ही मैं इसको बन्द कर दूँगा।'

'लेकिन अगर यह तुम्हारे हाथ से गिर जाए, और टूट जाए, तो ?'

'किन्तु पिताजी, आप इसको अपने ही हाथ में रखकर खोलिए, और मुझको खुली घड़ी दिखा दीजिए। फिर तो कोई गड़बड़ होगी नहीं न ?'

'लेकिन अभी मुझको काम है। तुम फिर कभी आ जाना।'

'पर इसमें तो कुछ ही देर लगेगी। आप बात करेंगे, इतनी देर में तो घड़ी खोलकर बन्द भी की जा सकेगी। मैं तो इसके चक्र ही देखना चाहता हूँ।'

'पर अभी चाकू कहाँ है ? अभी तो तुम जाओ। इस समय मुझको परेशान मत करो !'

'चाकू मैं अभी रसोईघर में से ले आता हूँ। लीजिए, यह चाकू ले आया।'

'भई, तुम दूर हट जाओ। अभी मुझको फुरसत नहीं है। कल खोलकर दिखा दूँगा।'

'किन्तु पिताजी, अभी ही खोल दीजिए न ! बस, कुछ ही देर लगेगी।'

'अच्छी बात है, तो लो, एक बार खोलकर दिखा देता हूँ। देखो, झटपट देख लो।'

: 26 :

नन्दिनी की नाराजी कैसे दूर हुई ?

'अरे, यहाँ, इस कोने में यह कौन रूठकर बैठा है ? अरे हाँ, यह तो नन्दिनी बैठी लगती है। क्या हुआ बहन ?'

'सुनिए, इससे कोई बात मत कीजिए। आज तो इसको भूखी ही सो जाने दीजिए। यह रोज नए-नए नखरे करती है। इसके ये नखरे कैसे बरदाश्त किए जाएँ ?'

'बात क्या है ?'

'आज इस समय कढ़ी नहीं बनाई, तो कहती है, कढ़ी दो। अब मैं कढ़ी कहाँ से दूं ? दो दिन पहले बुखार से तड़प रही थी, और कह रही थी कि छाछ दो। अगर मैं दे दूं, तो आप ही मुझ पर नाराज होंगे न ?'

'नन्दिनी ! इधर आओ ! अभी तुम मेरे साथ खाने बैठोगी न ?'

'ऊँ···ऊँ···ऊँ।'

सुनो, अब परोसना शुरू कर दो। जमुना, तुम यहाँ बैठो। रघु, तुम वहाँ सामने बैठो। छोटू, तुम मेरे सामने बैठ जाओ।'

सब भोजन के लिए बैठ गए।

'भई, आज की यह खिचड़ी तो बहुत बढ़िया बनी है ! और, यह साग भी बहुत मीठा और बड़ा जायकेदार बना है।'

नन्दिनी ऊँ-ऊँ करती हुई अपना रोना छोड़कर खड़ी हो जाती है। बच्चे सब नन्दिनी की तरफ देखने लगते हैं। पिताजी इशारे से कहते हैं : चुप ! कोई उसकी तरफ देखो मत !'

पिताजी : 'भई आज तो रास्ते में बड़ा मजा आ गया। कल ताजिए निकलने वाले हैं, इसलिए आज···।'

छोटू : 'आज रात तो ताजियों का जुलूस निकलेगा न ? और हम सब देखने जाएँगे न ?'

जमुना : 'पिताजी, चलिए, हम ताजिए देखने चलें।'

नन्दिनी अपनी नाक और आँख पोंछती-पोंछती सबके पास आ गई।

पिताजी : 'तुम सब चाहोगे, तो चलेंगे।'

नन्दिनी : 'पिताजी, मुझको भी चलना है।'

पिताजी : 'अच्छी बात है, तो तुम झटपट खा लो। बाद में हम सब शंकर काका की दुकान पर जाकर बैठेंगे। तुम वहाँ गाड़ी पर सो जाना। जब ताजिए आएँगे, तो मैं तुमको जगा दूंगा।'

नन्दिनी : 'माँ ! मुझको थोड़ा साग और दो। बहुत अच्छा लग रहा है।'

: 27 :

तुम बड़े बुद्धू हो !

'बुद्धू कहीं के ! तुम इतने बड़े होकर भी इस तरह रोते क्यों हो ? तुम तो चौथी में पढ़ रहे हो न ? तुम अपनी पिस्तौल इसको दे दो।'

'मैं अपनी पिस्तौल इसको क्यों दूं ? बाजार में अपने आठ आनों से मैंने पिस्तौल खरीदी और इसने इसके फुग्गे खरीदे। इसके फुग्गे फूट गए, तो अब यह कहती है : 'पिस्तौल मुझको दे दो।'

'लेकिन तुम तो इससे बड़े हो न ? यह अभी इन सब बातों को समझती कहां है ?'

'क्या मैं बड़ा इसलिए हुआ हूं कि इसको अपनी पिस्तौल दे दूं ? मैं तो अपनी पिस्तौल नहीं दूंगा। इसको रोना हो, तो यह रोती रहे। मैं अपनी पिस्तौल क्यों दूं ?'

'तुम तो बड़े ही बुद्धू हो। मूर्ख हो ! गधे हो !'

'रमा, सुनो ! तुमने अपने सब फुग्गे फोड़ डाले। अब तुम पिस्तौल क्यों मांग रही हो ? भला, इस तरह अपनी चीज़ कोई किसी को देता है ? तुमको रोना ही हो, तो तुम आराम से रोती रहो। जितेन्द्र तुमको अपनी पिस्तौल नहीं देगा।

इधर जितेन्द्र रो रहा है, उधर रमा रो रही है। इतने में मां आईं। बोलीं : 'जितेन्द्र ! कहो, क्या बात है ? रमा, तुम क्यों रो रही हो ?'

'जितेन्द्र मुझ को अपनी पिस्तौल नहीं दे रहा।'

'भला, मैं क्यों दूं ?'

मां : 'जरा ठहरो, ठहरो ! आज सुबह सरला काकी ने तुम सबके लिए पटाखे भेजे हैं। तुम सब यहां पर बैठ जाओ। हम यहीं पटाखों का बंटवारा कर लें।

नन्दन और चन्दन दौड़ते हुए आए। रमा और जितेन्द्र अपने आंसू पोंछते-पोंछते आ पहुंचे।

मां ने कहा : 'ठहरो। सब एक कतार में बैठ जाओ। सुनो, ये दो पेटियां नन्दन की, दो चन्दन की, दो रमा की और दो जितेन्द्र की। ये दो-दो फुल-झड़ियां और पटाखों की ये दो-दो लड़ियां। अब पिस्तौल से छूटने वाली टिकियों की यह एक पेटी बची है...।'

जितेन्द्र ने कहा : 'यह पेटी मुझको दे दो।'

मां बोलीं : 'तुम अपनी पिस्तौल मुझको दो। मैं सबको ये टिकियाएं बांट देती हूं। बाद में तुम सब बारी-बारी से इनको फोड़ लेना। रमा, तुमको यह पिस्तौल चाहिए ?'

'हां, चाहिए, पर जितेन्द्र मुझको देता नहीं है।'

'अब टिकिया फोड़ने के लिए देगा। भला, हम इस तरह रोकर किसी की चीज़ क्यों लें ? जरूरत हो, तो मांग लिया करें, और फिर लौटा दिया करें। अपनी-अपनी चीज़ तो सब अपने ही पास रखते हैं न ? तुम भी अपने फुग्गों को सम्भाल कर रखती थीं न ?'

: 28 :

ये नखरे क्यों ?

पिताजी ने कहा : 'लछमन सुनो ! तुम समझते हो या नहीं ? तुम्हारे ये नखरे क्यों ? मुझको तो यह थाली चाहिए और वह कटोरी चाहिए और यही पटा चाहिए और यही करना है, और वही करना है। आखिर बात क्या है ?'

लक्ष्मन बोला : 'ऊँ...ऊँ...ऊँ तो तुझको खाना नहीं है।'

पिताजी ने कहा : 'न खाना हो, तो मत खाओ। सुनती हो, तुम आज इसको कुछ खिलाओ ही मत। मुझको तो अब इससे कोई लगाव नहीं रहा। एक बार इसको भूखा ही सो जाने दो। यह अपने आप ही सीधा हो जाएगा।'

माँ बोलीं : 'भला, बच्चे को इस तरह भूखा कैसे सुलाया जाए ? आखिर मैं तो माँ हूं न ?'

पिताजी ने कहा : 'मैं जानता हूं, तुम कैसी माँ हो ! तुम इसी तरह अपने इस बच्चे को बिगाड़ती हो। यह लछमन तुम्हारी ही वजह से इतना ज़्यादा बिगड़ गया है।'

माँ बोलीं : 'कोई बिगड़ा-विगड़ा नहीं है। बच्चा है। कभी-कभी ज़िद भी पकड़ लेता है। क्या हम भी उसी की तरह ज़िद लेकर बैठ जाए ?'

पिताजी ने कहा : 'तो तुम इसके साथ अपना सिर खपाती रहो। मैं तो अपने काम से बाहर जा रहा हूं।'

माँ बोलीं : 'फिकर तो जन्म देने वाली माँ को ही रहती है न ? भला, वह बेचारी कहां जाए ?'

'बेटे लछमन ! रोओ मत ! तुम अपनी वह सफेद-सफेद कटोरी ही चाहते हो न ?'

हां, मुझको वही कटोरी चाहिए। वह कटोरी दोगी, तो मैं खाऊंगा, नहीं तो नहीं खाऊँगा।'

'लेकिन बेटे, वह कटोरी तो आज कहीं मिल ही नहीं रही है। देखो, उस टांड पर नहीं है, पनियारे पर नहीं है, रसोईघर में नहीं है, कहीं भी नहीं है। आओ, हम उसको खोज लें।'

'ऊँ...ऊँ...ऊँ। मेरी सफेद-सफेद कटोरी !'

'हां भई, तुम्हारी वह कटोरी तो बहुत ही अच्छी थी। पर पता नहीं, कहां चली गई है ? आओ हम उसको इस घोड़ी के नीचे देख लें। अरे, कटोरी तो यहां भी नहीं है। लगता है कि खो गई है। हां, बेटे हो सकता है कि हमारे घर काम करने वाली बहन उसको ले गई हों। कल हम जसोदा बहन से पूछ लेंगे कि क्या कटोरी वे तो नहीं ले गईं ? हम जसोदा बहन से यह भी कह देंगे कि हमारे लछमन भैया से पूछे बिना वे कटोरी कहीं न ले जाएं।'

'तो अभी मैं दूध किसमें लूं ?'

'अपना यह प्याला है न ? इसी में ले लो।'

: 29 :

विद्यालय में न जाने के लिए

(1)

हमारे साथ प्रयाग नाम का एक लड़का पढ़ता था। उसको विद्यालय जहर की तरह कड़आ लगता था। उसके पिताजी उसको जबरदस्ती पढ़ने भेजा करते थे, इसलिए उसको विद्यालय तो आना ही पड़ता था। प्रयाग ने इससे बच निकलने की एक तरकीब खोज ली।

एक दिन उसने घासलेट पी लिया। सारे बदन से पसीना बह निकला ! दौड़-भाग मच गई। वह पूरी एक बोतल घासलेट पी चुका था। मरते-मरते बचा।

लोगों ने पूछा : 'कहो, प्रयाग ! तुमने घासलेट क्यों पी लिया था ?'

प्रयाग ने कहा : 'विद्यालय न जाने के लिए।'

(2)

कालूराम को भी विद्यालय का नाम सुनते ही जाड़ा लगने लगता था। वैसे, वह एक अच्छा लड़का था। छुट्टी के दिनों में वह अपनी सोलहों कलाओं से खिल उठता था। लेकिन विद्यालय का नाम सुनते ही उसके सब अंग शिथिल पड़ जाते थे ! जब वह विद्यालय न पहुँचता, तो शिक्षक टाँगाटोली करवाकर उसको बुलवा लेते।

कालूराम ने विद्यालय न जाने की एक युक्ति खोज ली।

विद्यालय का समय होते ही वह अपनी पट्टी और बरता लेकर गांव के बाहर चला जाता। कभी नदी की तरफ, कभी तालाब पर, यों दिन-भर भटक कर शाम को घर आ जाता।

शिक्षक ने कहा : 'जाओ, कालूराम को टाँगाटोली बनाकर ले आओ।' पर कालूराम अपने घर में था ही नहीं। वह तो बहुत दूर चला गया था। उसको कैसे पकड़ा जाए ?'

गाँव के बाहर कुम्हारों की बस्ती थी। वहाँ एक छोटी-सी कुइयाँ थी। कालूराम उस कुइयाँ में छिप कर बैठ गया।

खोजते-खोजते हम वहाँ पहुँचे। कालूराम जोर-जोर से चीखने-चिल्लाने लगा : 'ओ, कुम्हारिन माँ, ओ कुम्हारिन माँ ! ये लड़के मुझ को पकड़ कर ले जा रहे हैं। मुझको इन से छुड़ा लो, छुड़ा लो !'

कुम्हार ने पूछा : 'बेटे, तुम यहाँ इस कुइयाँ में क्यों छिपे थे ?'

'इसलिए कि कहीं ये लड़के मुझ को विद्यालय में न ले जाएँ।'

(3)

कुछ समय पहले अमेरिका में एक विद्यालय सुलग उठा। न जाने कितने छोटे-छोटे बच्चे जलकर मर गए।' भला, विद्यालय कैसे सुलग उठा ?

एक लड़की ने सुलगा दिया।

क्यों सुलगाया ?

लड़की को विद्यालय जाना पसन्द नहीं था। लड़की ने विद्यालय न जाने के लिए कई बहाने बनाए, लेकिन उसकी एक न चली। उसने बीमारी का बहाना किया, झगड़ा करके देखा, भाग कर देखा, पर सब बेकार रहा।

लड़की ने सोचा : 'इस विद्यालय के कारण ही तो मुझ को यहाँ पढ़ने आना पड़ता है न ?'

दूसरे दिन वह घासलेट में भिगोया हुआ पोता लेकर विद्यालय पहुँची और उसने विद्यालय में आग लगा दी। विद्यालय जलकर खाक़ हो गया !

पुलिस ने लड़की को गिरफ़्तार किया और उस पर मुक़दमा चलाया।

न्यायाधीश ने पूछा : 'तुमने विद्यालय क्यों जला दिया ?'

लड़की ने कहा : 'मेरे पिताजी मुझ को जबरदस्ती विद्यालय में पढ़ने भेजते थे, और मैं वहाँ जाना नहीं चाहती थी।'

❀ ❀ ❀

विद्यालय न जाने के लिए प्रयाग ने घासलेट पी लिया, कालूराम कुम्हार की कुइयाँ में छिपा और अमेरिका की लड़की ने अपना पूरा विद्यालय ही जला दिया !

ये तीनों सच्ची घटनाएँ हैं। दो अपने देश की, तीसरी परदेश की।

इस विरोध के बलाबल के बीच का अन्तर स्पष्ट और सहज है। इससे कहीं कमज़ोर ढंग से तो अनेकानेक क्षीणप्राण बालक विद्यालय के प्रति अपने विरोध के साथ विद्यालय में जाते रहते हैं, और वहाँ प्रकट रूप में चुपचाप, शान्तिपूर्वक बैठते हैं।

क्या विद्यालयों को बालकों के मन में अपने प्रति अधिक प्रतिष्ठा का भाव नहीं जगाना चाहिए ? किन्तु इस तरह घूस या रिश्वत देकर प्राप्त की गई प्रतिष्ठा का लाभ ही क्या है ?'

: 30 :

मना करते हैं

(1)

कुतिया के पिल्लों के साथ खेलना मुझ को बहुत अच्छा लगता है। लेकिन माँ कहती हैं : 'हमको इन पिल्लों के साथ नहीं खेलना है।'

मंजु के साथ खेलना मुझको बहुत पसन्द है। लेकिन पिताजी कहते हैं : 'हमको मंजु के साथ नहीं खेलना है।'

साग सँवारना मुझ को बहुत अच्छा लगता है। लेकिन दीदी कहती हैं : 'तुम साग मत सँवारा करो।'

जूतों को एक कतार में जमाने का काम मुझ को बहुत पसन्द है। लेकिन जब मैं जूते जमाने लगता हूँ, तो चाचाजी कहते हैं : 'जूते जमाने का काम हमारा नहीं है।'

(2)

मैं एक पिल्ले के साथ खेल रहा था। माँ ने कहा : 'तुम उसके साथ मत खेलो। वह कटखना है।'

मैं मंजू के साथ खेल रहा था। पिताजी ने मुझ से कहा : 'अभी मंजु के साथ मत खेलो। उसको खुजली हुई है।

मैं साग सँवारने जा रहा था। तभी दीदी ने कहा : 'उस चाकू से मत सँवारना। उसको अभी-अभी सान पर चढ़ाया है।'

मैं जूतों को एक कतार में रखने लगा। चाचाजी ने कहा: 'अभी यह काम मत करो। नहाने से पहले कर लेना !'

: 31 :

पिताजी के पास जाना है

छोटे काका : 'रमण ! अब तुम कब तक रोते रहोगे ? भला, तुमको कचहरी कैसे ले जाया जाए ? वहाँ कचहरी में छोटे बच्चों का क्या काम ?'

'ऊँ···ऊँ···ऊँ। मुझको पिताजी के पास जाना है। ऊँ···ऊँ···ऊँ।'

छोटे काका : 'अब तुम चुप भी रहोगे या नहीं ? यहाँ मैं पढ़ रहा हूँ। तुम्हारे रोने से मेरे पढ़ने में रुकावट पैदा होती है। तुम चुप हो जाओ !'

छोटी काकी : 'यह रमण इस तरह मानेगा नहीं। अभी बच्चा है, इसलिए रो रहा है। भैयाजी, इसको अपने साथ ले जाते, तो अच्छा रहता। यह वहाँ बैठा-बैठा खेलता रहता।'

'बेटे, रमण ! तुम इधर आओ। मैं तुमको पेड़ा देती हूँ।'

'मुझको पेड़ा नहीं खाना है। मुझको तो पिताजी के पास जाना है। ऊँ···ऊँ···ऊँ।'

'यह इस तरह मानेगा नहीं। वैसे भी यह उलटी खोपड़ी का तो है ही। रमण ! सुनो, तुम चुप रहते हो या नहीं ? यह छड़ी देखी है ? मेरे सामने तुम्हारी यह ज़िद नहीं चलेगी। भले, तुम अपनी माँ के सामने चलाते रहो, और अपने पिताजी के सामने चलाते रहो !'

रमण रोने लगता है, अधिक रोता है, लम्बी और तीखी आवाज़ में जोर-जोर से रोने लगता है।

काकी ने कहा : 'तुम इस तरह इसको डाँटो-डपटो मत।

अभी तुम्हारी भाभी आएँगी, तो कहेंगी कि ये इस बच्चे को नाहक़ सता रहे हैं। भैया, रमण ! आओ, इधर आ जाओ। हम ये गेहूँ बीनें। लो, मैं तुमको ये कंकर देती जाती हूँ।'

रमण : 'ऊँ···ऊँ···ऊँ···। मुझको तो पिताजी के पास जाना है। ऊँ···ऊँ···ऊँ।'

रमण अपने पैर पछाड़ता है। इतने में रमण की माँ आती हैं। वे कहती हैं : 'बेटे, तुम क्यों रो रहे हो ?'

'मुझको पिताजी के पास जाना है। वे मुझको अपने साथ नहीं ले गए। मुझको तो वहाँ जाना है। ऊँ···ऊँ···ऊँ।'

'तो तुम्हारे पिताजी कचहरी कब गए ?'

'अभी-अभी गए हैं। मुझको भी वहीं जाना है। ऊँ···।'

'लेकिन रमण ! आज तो हमको मौसी के घर जाना है न ? कल हमने मौसी से कहा था न कि हम उनके घर जाएँगे ! तो तुम झटपट अपने कपड़े पहन लो। हम फौरन ही चल दें।'

'ऊँ···ऊँ···ऊँ। मैं यह पाजामा नहीं पहनूंगा। मुझको तो वह पाजामा पहनना है। ऊँ···।'

'लो, वही पहना देती हूँ। बोलो, टोपी कौनसी पहनोगे ? वह या यह ?'

'यह।'

'अच्छा, तो यही पहन लो। लो, चलो अब हम मौसी के घर चल दें।'

'माँ ! क्या रास्ते में कचहरी आएगी ?'

'हाँ-हाँ, आएगी तो सही। मैं तुमको दूर से दिखा दूंगी कि तुम्हारे पिताजी कहाँ बैठते हैं।'

: 32 :

बात किसकी मानी जाए ?

पिताजी कहते हैं : 'सुबह जल्दी जागना चाहिए। जल्दी जागने से बुद्धि बढ़ती है।'

माँ कहती हैं : 'नींद पूरी होने के बाद ही जागना चाहिए। जल्दी जागने से नींद बिगड़ती है, और दिन भी खराब होता है।'

पिताजी कहते हैं : 'थोड़ा खाना चाहिए। बहुत खाने से आलस्य बढ़ता है।'

माँ कहती हैं : 'जितना रुचि के साथ खा सको, उतना ही खाओ। भूख लगने पर ही खाओ।'

पिताजी कहते हैं : 'दिन में एक ही बार दिशा-जंगल के लिए जाओ। सुबह ही जाओ।'

माँ कहती हैं : 'जब हाजत हो, तभी जाओ। हाजत रोको मत।'

'पिताजी कहते हैं : 'दोपहर में मत सोओ। यह आदत अच्छी नहीं।'

माँ कहती हैं : 'जब भी नींद आए, सो लिया करो। न आए, तो न सोओ।'

: 33 :

सरौते के बीच सुपारी

माँ : 'सुनो, सुपारी का यह टुकड़ा तुम फेंकते हो या नहीं ? अभी से यह आदत कैसी ?'

पिता : 'खाने क्यों नहीं देती हो ? इसमें कौन बुराई है ?'

माँ : 'ठीक से बैठो। पलथी लगाकर बैठो। इस तरह औंधे घुटनों पर क्यों बैठे हो ?'

पिता : 'चाहे ऐसा बैठे, चाहे वैसा बैठे, बात तो एक ही है। भला, इसमें ठीक से क्या बैठना था ?'

माँ : 'जरा ढंग से सोओ न ? इस तरह पीठ के बल क्यों सोए हो ?'

पिता : 'चाहे करवट लेकर सोए, चाहे पीठ के बल सोए, इसमें फ़रक़ क्या पड़ता है ? वह जैसे भी सोना चाहे, सोने दो।'

माँ : 'देखो, दाहिने हाथ से खाओ। बाएँ हाथ से क्यों खाने लगे ?'

पिता : 'बायाँ क्या और दाहिना क्या, एक ही बात है। वह जिस हाथ से भी खाना चाहे, उसको उसी हाथ से खाने दो न ? भला, इसमें नुक़सान ही क्या है ?'

: 34 :

सुनते क्यों नहीं हो ?

(1)

'सुरेश, पानी ला रहे हो न ?'

सुरेश परेशानी की हालत में खड़ा है।

'सुरेश, तुम सुनते क्यों नहीं हो ? पानी क्यों नहीं ला रहे हो ?'

सुरेश खड़ा-खड़ा देख रहा है।

'सुरेश, तुम अन्दर जाते क्यों नहीं हो ? पुतले की तरह यहीं क्यों खड़े हो ?'

सुरेश घर के अन्दर जाकर वापस आ गया।

'सुरेश, तुम पानी क्यों नहीं ला रहे हो ? तुम सुनोगे या नहीं ?'

सुरेश ने कहा : 'पिताजी, छोटी मटकी फूट गई है। पनियारे तक मेरे हाथ पहुँचते नहीं हैं। माँ पाखाने गई हैं।'

(2)

'गणेश, अपना यह खिलौना तुम इस मुन्ने को दे दो, भला !'

गणेश खड़ा-खड़ा सोचता रहा।

'जरा जल्दी ले आओ। यह मुन्ना ज़िद पर चढ़ा है। इसको चुप करना है।'

गणेश कुछ बोला नहीं। चुपचाप खड़ा ही रहा।

'सुनो, गणेश ! तुम खिलौना ला रहे हो या नहीं ? फौरन ही ले आओ। तुम देख नहीं रहे हो कि मुन्ना रो रहा है ?'

गणेश घर के अन्दर जाकर वहीं बैठ गया।

पिताजी ने जोर से पुकारते हुए कहा : 'गणेश ! तुम कहां चले गए हो ? खिलौना ला रहे हो या नहीं ? खिलौना मुझको दे दो। देते हो या नहीं ?'

गणेश आया नहीं।

पिताजी गुस्से-भरी आवाज़ में बोले : 'गणेश ! इधर आओ। खिलौना लाओ।'

गणेश ने कहा : 'पिताजी ! माँ ने खिलौना देने से मना किया है।'

: 35 :

ऐसे रखो !

दो साथी यात्रा पर निकले। रास्ते में एक नदी मिली। एक साथी नदी में नहाने लगा। इतने में जोर की बाढ़ आ गई। नहाने वाले साथी के पैर

उखड़ गए और वह बहने लगा। किनारे पर खड़े साथी ने कहा : 'पैर ऐसे रखो।' अपने दोनों पैर चौड़े करके वह रौब के साथ खड़ा हो गया और बोला : 'पैर ऐसे रखो, ऐसे रखो।'

दूसरे साथी ने कहा : पानी का जोर बहुत है। पैर टिक नहीं रहे हैं।'

पहला बोला : 'अरे भाई, पैर ऐसे रखो, ऐसे।'

दूसरे ने कहा : 'पैरों के नीचे की रेत खिसकती जा रही है। पैर कहीं जमते ही नहीं हैं।'

पहला बोला : 'तुम मेरी बात सुनो ! पैर ऐसे, ऐसे, ऐसे रखो !'

पानी का जोर बढ़ता गया। 'ऐसे रखो' की बात रखी रह गई और नदी में नहाने के लिए उतरा साथी बाढ़ में बह गया।

लेकिन इस तरह 'ऐसे रखो' कहने से रखने का काम होता कहाँ है ? इसके लिए तो रखना सिखाने की जरूरत होती है। रखने का अभ्यास भी होना चाहिए। यदि ऐसा न हो, तो एक साथी के कहने और दूसरे के सुनने भर से कोई काम होता नहीं।

घर के बड़े-बूढ़े लोग अपने बालकों को दिन-रात 'ऐसे रखो, ऐसे रखो' की बातें कहते रहते हैं। वे उनसे कहा करते हैं : ठीक-ठीक बोलो, अच्छी तरह बैठो, शान्त रहो, साफ़-सुथरे रहा करो, काम करते रहो, हुक्मों का ठीक पालन किया करो, सच बोलो, हिलमिल कर खेलो, बाँट कर खाओ, मौज करो, पहला नम्बर लाओ, इनाम पाओ आदि-आदि। लेकिन सवाल यह है कि बालक ये सारे काम करें कैसे ? हम तो 'ऐसे रखो' कह कर खड़े रह गए। क्या इतना कहने-भर से बालक सब कुछ करना सीख जाता है ? पहले हम बालक को समझाएँ। उसको 'कैसे रखना' सिखाएँ और फिर कहें कि 'ऐसे रखो !'

: 36 :

विनोद और साग

(1)

'बेटे विनोद ! तुमने यह साग क्यों छोड़ दिया ?'

'माँ, अब यह साग मुझसे खाया नहीं जाता है।'

'भई, तुम इसको खा लो। इस तरह छोड़ना ठीक नहीं।'

'नहीं, माँ नहीं ! अब यह मुझसे नहीं खाया जाएगा। मैंने बहुत खा लिया है।'

'तो तुमने पहले से इतना साग अपनी थाली में क्यों रखवा लिया ?'

'भला, मुझको पहले से कैसे पता चलता कि मैं कितना खा पाऊँगा ?'

'लेकिन इस तरह थाली में साग छोड़ना अच्छा तो नहीं न है ?'

'माँ, आगे मैं इसका ध्यान रखूँगा। ज्यादा नहीं लूंगा।'

पिता बोले: 'अगर हम ऐसी व्यवस्था करें कि शुरू में साग थोड़ा ही परोसें, और आगे जरूरत के हिसाब से परोसते रहें, तो कैसा हो ?'

'पिताजी, तब तो बहुत ही अच्छा हो। उस हालत में साग थाली में कभी छूटेगा ही नहीं, और व्यर्थ का नुकसान भी नहीं होगा।'

(2)

'बेटे विनोद ! थाली में साग छोड़ना मत। हमको इस नुकसान से बचना है। समझे !'

'माँ, अब तो पेट भर चुका है। अब यह साग अच्छा नहीं लगता।'

'तुम साग छोड़ोगे, तो नुकसान होगा न ? पानी थोड़ा कम पीना। यह साग तो तुम खा ही लो !'

विनोद टक लगाकर देखता रहा।

माँ बोली : 'उल्लू की तरह मेरे सामने क्यों देख रहे हो ? साग ऐसे कैसे छोड़ा जा सकता है ?'

परेशान विनोद चुपचाप बैठा रहा।

पिता ने कहा : 'यों बेवकूफ की तरह बैठे क्यों हो ? साग खाओगे या नहीं ?'

विनोद की आँखों में आँसू आ गए।

माँ ने डपट-भरी आवाज में कहा : 'तुम टालमटोल क्यों कर रहे हो ? खा क्यों नहीं लेते ?'

विनोद ने साग मुँह में रखा और आँख मूंद कर उसको निगल गया। दूसरे ही क्षण 'ओ-ओ' की आवाज़ के साथ ज़ोर की कै हुई, और खाने की जगह गन्दी हो गई !

: 37 :

एक घटना

मैं झूले पर बैठा था। मेरे मित्र हजामत बनवा रहे थे। शिक्षा-सम्बन्धी बातें चल रही थीं। घर के अन्दर से आवाज़ आई : 'तुम बाहर जाते हो या नहीं ? मैं तुमको अभी पीट दूंगी।'

बड़ा बच्चा रोता-रोता हमारे पास आया।

मित्र ने पूछा : 'रोते क्यों हो ?'

'नन्दन मुझको मेरी फिरकनी नहीं दे रहा।'

इसी बीच अन्दर से फिर आवाज़ आई : 'आज इस कम्बख्त को पीटना होगा। भला, मैं इसको फिरकनी कहाँ से दूं ?'

पिता बोले : 'बेटे, रोओ मत। मै कल तुम्हारे लिए नई फिरकनी ले आऊंगा।'

'ऊं--ऊं मुझको फिरकनी चाहिए।'

'कल मिलेगी।'

अन्दर से फिर आवाज़ आई : 'सुनो तुम यहाँ आओ, यहां।'

बच्चा अन्दर गया। अन्दर से धप्पे की आवाज़ आई। बच्चा रोता-रोता बाहर आया।

'तुम वापस इधर आते हो या नहीं ?'

बच्चा फिर अन्दर गया। अन्दर का दरवाज़ा बन्द हुआ। बच्चा फिर पीटा गया।

अन्दर से आवाज़ आई : 'ऊँ···ऊँ···ऊँ।'

हजामत बनवाते-बनवाते मित्र ने कहा : 'भई, ऐसा क्यों करते हो ? बच्चे को मत पीटो !'

'पीटूं नहीं, तो क्या करूँ ? क्या मैं खुद मर जाऊँ ?'

बच्चा फिर बाहर आया।

मैं गहरे सोच में डूब गया। हजामत चल रही थी। मित्र गुमसुम बैठे थे। वे बच्चे की मां से कुछ कहने जा रहे थे। मैंने उनको रोका और कहा : अभी रुकिए। इस समय वे बहुत तपी हुई हैं।'

बात वहीं अटकी रही।

आखिर किया क्या जाए ?

: 38 :

किसी की रीस किसी पर

(1)

कमला की माँ पड़ोसिन के साथ बात करती रहीं और उधर चूल्हे पर रखा साग जल गया। तभी कमला ने अपनी माँ से पूछा : 'माँ ! आज आम मँगवाने हैं ?'

माँ बोली : 'अभागिन, तुम अपना मुँह काला करो ! देखती नहीं हो कि साग जल गया है। बस, सारे दिन आम, आम, आम की रट लगाती रहती हो।' तमाचा खाकर कमला रोती-रोती बाहर आई।

(2)

चम्पा बहन की ननद दो दिनों के लिए अपने मायके आई हैं। चम्पा बहन और उनकी ननद के बीच बराबर बारहवाँ चन्द्रमा बना रहता है। चम्पा बहन का कोई काम ननद को अच्छा नहीं लगता, और ननद का कोई काम चम्पा बहन को नहीं जंचता।

चम्पा बहन सुबह जल्दी नहाकर अपने बालों में कंघी करने बैठती हैं। ननद कहती हैं : 'सुबह-सुबह साज-सिंगार का यह क्या तमाशा लगा रखा है ?'

सुनकर चम्पा बहन तमतमा उठती हैं।

चूल्हे पर दाल चढ़ाते समय चम्पा बहन के हाथ जल गए। विजया खेलती-खेलती आई और बोली : 'माँ, आज तुम मेरे बालों में कंघी कर दोगी ? तुम अच्छी कंघी करती हो। बुआजी वैसी कंघी नहीं कर पातीं ।'

चम्पा बहन गुस्से-भरी आवाज़ में बोलीं : 'अभी तुम यहाँ से जाओ ! इस समय मैं तुम्हारे सिर में कंघी कैसे करूँ ? मेरा किया काम तुम्हारी बुआजी को पसन्द ही कहाँ है ? दूर हटो। तुम देखती नहीं हो कि मैं जल गई हूँ ?'

विजया उदास चेहरा लेकर लौट पड़ती है ।

(3)

रमेश घर आकर शीला से कहते हैं : 'सुनती हो ? आज दो मेहमान आने वाले हैं। मैं श्रीखण्ड लेने जा रहा हूँ। तुम पूरियाँ बना लेना।'

इस पर शीला झल्लाकर कहती हैं : 'आज सुबह ही से मेरा सिर दुख रहा है और तबीयत भी अच्छी नहीं है। ऐसे में ये मेहमान कहाँ से आ गए ? फिर भोजन के बाद दिन में दो बजे तो स्टेशन जाना है।'

झुँझलाहट के साथ झल-फल करती हुई शीला आटा छानने बैठती है। नन्दिनी आती है और कहती है : 'माँ ! आटा छानने में मैं तुम्हारी मदद करूँ ? यह छलनी मुझको दो।'

शीला बोलीं : 'तुम यहाँ से भागती हो या नहीं ? मैं तुमको अभी पीट दूँगी। वैसे ही मुझको काम की जल्दी है। भला, तुम मेरी क्या मदद करोगी ? तुम्हारे पिताजी क्या जानें कि काम झट-फट कैसे होता है ?'

नन्दिनी का चेहरा उतर गया। वह चुपचाप बाहर चली गई।

(4)

आज दुकान का हिसाब करने में छगनलाल से भूल हो गई। सेठ उन पर नाराज़ हुए। छगनलाल घर आए और चिड़चिड़ी हालत में ओसारे में घूमने लगे। लल्ली आई और बोली : 'पिताजी ! आप आज मुझको अपने पैरों पर झुलाइए।'

छगनलाल ने कहा : 'आज तुम अपनी माँ के पास जाओ। मैं इस समय काम में हूँ।'

लल्ली बोली : 'आप काम में कहाँ हैं ? आप तो ओसारे में घूम रहे हैं। थोड़ी देर मेरे साथ खेलेंगे नहीं ?'

छगनलाल आँखें लाल करते हुए गुर्राए, 'लल्ली, क्या कहा तुमने ? तुम बोलना भी जानती हो या नहीं ? जाओ, अभी भाग जाओ। आज मैं तुमको अपने पैरों पर नहीं झुलाऊँगा। खबरदार ! आगे कभी ऐसी बात मत कहना !'

लल्ली डरती-डरती घर के अन्दर चली गई।

(5)

अभी-अभी रमणीक लाल को अपने मित्र का गुस्से से भरा तीखा पत्र मिला। पत्र पढ़ने के बाद चिड़चिड़ा मन लेकर और अपने मित्र को बुरा-भला कहकर वे अपने बरामदे में टहलने लगे। चन्दन उछलता-कूदता आया और बोला : 'पिताजी ! आज घूमने नहीं चलेंगे ? समय तो हो चुका है।'

रमणीक लाल बोले : 'अभी तुम जाओ। आज नहीं चलेंगे।

चन्दन ने कहा : 'पिताजी ! चलिए न ? हम दोनों भाई-बहन कपड़े पहनकर बहुत पहले से तैयार बैठे हैं। आज बैण्ड की बारी है।'

रमणीक लाल ने खीझ-भरी आवाज़ में कहा : 'अरे, तुम सुनती हो, इसको ज़रा अपने पास बुलालो। यह मुझको परेशान कर रहा है।'

अन्दर से जवाब मिला : 'मैं काम में लगी हूं। आप इनको घुमाने ले जाइए। ये बड़ी देर से तैयार होकर बैठे हैं।'

बच्चे बोले : 'पिताजी ! चलिए। मां भी कह रही हैं कि हम घूमने जाएं।...'

रमणीक लाल गरज उठे : 'सुनो, आज हमको घूमने नहीं जाना है। रोज-रोज घूमने क्या जाना था ? जाओ, भाग जाओ।'

दोनों बच्चे खिसिया गए और वापस चले गए।

(6)

'माधुरी' मासिक खोलकर देखा, तो उसमें उनको अपनी एक पुस्तक की समीक्षा दिखाई पड़ी। सम्पादक ने कड़ी टीका की थी। चन्द्रशेखर उबल पड़े। मन-ही-मन बड़बड़ाए : 'लोग समीक्षा करना जानते ही नहीं। कुछ भी तो ऊल जलूल लिख देते हैं!'

समीक्षा का उत्तर लिखने की बात सोचते हुए वे कागज-पेन्सिल लेकर बैठ गए।

लीला हँसती-हँसती आई और चन्द्रशेखर के हाथों में चार-पाँच फूल रखकर बोली : 'भाईजी! ज़रा चित्रों की वह पुस्तक उतार दीजिए।'

चन्द्रशेखर ने कहा : 'बेटी तुम अभी जाओ। मुझको लिखना है।'

लीला बोली : 'ज़रा उतार दीजिए न, भाईजी! मुझको चित्र देखने हैं।'

चन्द्रशेखर ने कहा : 'वहां चित्रों की किताब कहाँ है? कहीं और पड़ी होगी। तुम अभी जाओ। बाद में बात करेंगे।'

लीला बोली : 'भाईजी! किताब वह दीख रही है। ज़रा खड़े होकर आप उसको उतार दीजिए।'

चन्द्रशेखर का मन समीक्षा का उत्तर लिखने में उलझा हुआ था। उन्होंने भौहें चढ़ाकर कहा : 'लीला! तुम यहां से तुरन्त चली जाओ। मुझको लिखना है।'

लीला बोली : 'भाईजी, पहले किताब उतार दीजिए, फिर लिखिए।'

चन्द्रशेखर ताव में आकर गरजते हुए बोले : 'लीला! तुम अपनी माँ के पास जाओ। यहाँ मेरे कार्यालय से चली जाओ।'

लीला बोली : 'भाईजी!...'

चन्द्रशेखर ने गरज कर कहा : 'लीला! तुम सुनती नहीं हो?' फिर लीला की माँ को पुकारते हुए बोले : 'क्या तुम चौके में हो? तुम इस लीला को अपने पास बुला लो। यह नाहक़ मेरा सिर पचा रही है। लीला! तुम जाती हो या नहीं? याद रखो, हाथ पकड़ कर बाहर निकाल दूँगा!'

अपना मुंह लटकाकर और गुस्से-भरी आँखों से चन्द्रशेखर की तरफ देखकर लीला धीरे-धीरे वहाँ से चली गई।

: 39 :

जैसा देखे, वैसा करे

एक ही माँ-बाप के और एक ही घोंसले में पले-पुसे, एक ही डाल पर बैठे तोते के दो बच्चों को एक पारधी ने पकड़ा और उनको बेच दिया। एक को किसी खानदानी अमीर के घर और दूसरे को कलवार के घर।

अमीर के घर में मेल-मिलाप, प्रेम-प्रीति और मान-सम्मान का वातावरण था। अमीर के घर में रहा तोता अमीर के सारे गुण सीखा। वह अपने पिंजरे में बैठा-बैठा मीठी बोली बोलता रहता। किसी को आता देखता, तो कहता : 'आइए, बैठिए, जलपान कीजिए!' जो बातें वह सुना करता था, वैसी ही बातें वह बोला करता था।

कलवार के घर गाली-गलौज, झगड़ा-टण्टा, कलह, मारपीट और उठा पटक की हवा रहा करती थी, इसलिए वहाँ रहे तोते ने ये सारी बातें सीख लीं। वह अपने पिंजरे में बैठा-बैठा कड़ुई बोली बोलता रहता। तीखी आवाज़ में बोलता। किसी को आता-जाता देखता तो कहता : 'भागो, भागो! इधर क्यों आए? जाओ, भाग जाओ!' जो सुना, सो सीखा। जो देखा, सो किया।

हम अपने बच्चों को कैसे घरों में रखेंगे? हम उनको क्या दिखाएँगे? हमारे घरों में बच्चे क्या सुनेंगे? निश्चय ही बच्चे जो देखेंगे, सो करेंगे और जो सुनेंगे, सो बोलेंगे।

: 40 :

शिक्षकों की सम्मतियाँ

(1)

विद्यालय के शिक्षक की सम्मति—

'चन्द्रशेखर सबसे अधिक होशियार है। कक्षा में वह हमेशा पहला रहता है। बहुत शान्त स्वभाव का और शरमीला है। किसी के साथ उसका कभी

कोई झगड़ा होता ही नहीं। वह अदब-कायदे से रहता है। कहा काम करता है। उसकी आँख में शरम-लिहाज है। वह ऐसी कोई ग़लती या क़सूर करता ही नहीं कि जिससे उसको उलाहना सुनना पड़े।'

विद्यालय के व्यायाम-शिक्षक की सम्मति—

'चन्द्रशेखर बहुत ही कमजोर है। खेल-कूद में वह सबसे पीछे रहता है। लड़कियों की तरह डरपोक है। धींगामस्ती और उछल-कूद से हमेशा दूर रहता है। कायर है। डर के कारण ही काम करता है। कोई कड़ी बात कहने पर रोने लगता है।'

इनमें कौनसी सम्मति सही है?

शिक्षक की सम्मति—

'रमेश का मन पढ़ाई में नहीं लगता। वह कक्षा में हमेशा आखिरी नम्बर की शोभा बढ़ाता है। कहीं भी घुस जाता है। ऊधम मचाता रहता है। दो-चार शिकायतें तो उसकी हर दिन आती ही हैं। मन रहा, तो काम किया। न रहा, तो नहीं किया। हुक्म की पाबन्दी उसके बस की बात नहीं। उलाहना सुन लेगा, पर करेगा वही जो उसको पसन्द होगा। बुद्धि की दृष्टि से बहुत ही मन्द है।'

व्यायाम-शिक्षक की सम्मति—

'रमेश पहलवान है। जीवट वाला है। बढ़िया-से-बढ़िया खिलाड़ी है। चतुर है। सूझ-बूझवाला है, निडर है। हुक्म का पाबन्द है। वह कभी ऐसा कोई काम करता ही नहीं कि जिसके कारण उसको किसी का उलाहना सुनना पड़े। आपस के झगड़े-टण्टे मिटाने में वह बेजोड़ है। शरारतियों की शरारतें वह ख़तम कर देता है!'

कौन-सी सम्मति सही है?

: 41 :

एक बढ़िया हल

विनोद ने कहा : 'रंजन! मुझको पढ़ना है। डण्डे बजा-बजाकर तुम आवाज़ मत करो।'

रंजन बोला : 'लेकिन मुझको तो खेलना है और डण्डों वाले रासका अभ्यास करना है।'

विनोद : 'भई, तुम ज़रा दूर जाकर खेलो। मुझको परेशानी होती है।'

रंजन वहीं खेलने और डण्डे बजाने लगा। विनोद ने उसके डण्डे छीन कर दूर फेंक दिए। रंजन ज़मीन पर लौटकर रोने लगा। दोनों की माताएँ दूर से देख रही थीं।

विनोद की माँ ने कहा : 'बहन, विनोद को कहीं दूर जाकर पढ़ना था। वह वहीं क्यों बैठा रहा? उसने नाहक रंजन को रुलाया।'

रंजन की माँ बोलीं : 'क्या रंजन दूर जाकर अपने डण्डों से खेल नहीं सकता? जहाँ विनोद पढ़ रहा हो, वहीं वह डण्डों की आवाज़ क्यों करता है?'

विनोद की माँ ने कहा : 'अगर विनोद थोड़ी दूर चला गया होता, तो रंजन को रोना न पड़ता।'

रंजन की माँ बोलीं : 'रंजन के रोने से क्या उसके कोई सोने के आँसू टपके हैं? उसको भी समझना चाहिए कि जहाँ कोई काम कर रहा हो, वहाँ किसी तरह की खड़खड़ाहट नहीं होनी चाहिए।'

दोनों माताएँ अपनी बढ़िया समझदारी का परिचय दे रही थीं। इतने में दोनों बालक खेलते-कूदते आए, और बोले : 'हमको भूख लगी है। कुछ खाने को दो।'

झगड़ा अपने आप मिट गया।

दोनों बालक एक-दूसरे के पड़ौसी थे।

दोनों माताएँ आपस में सहेलियाँ थीं।

कितना बढ़िया मेल-मिलाप और कैसा बढ़िया हल!

: 42 :

अच्छी बात है, तो लो, चलो!

'पिताजी! मुझको आपके साथ चलना है।'

'नहीं बेटे, वहाँ तुम्हारा कोई काम नहीं।'

'ऊँ…ऊँ…ऊँ… मुझको ले चलिए।'

'बेटे, सुनो, तुम यहीं रहो। मैं तुम्हारे लिए खट्टी-मीठी गोलियाँ ले आऊँगा।'

'जी नहीं, मैं तो आपके साथ ही चलना चाहता हूँ।'

'अच्छी बात है, तो लो, चलो। तुम आधे रास्ते से वापस आ जाना।'

बाप-बेटे दोनों चलने लगे।

'पिताजी! मुझको अपनी गोद में उठा लीजिए। मैं थक गया हूँ।'

'नहीं बेटे, मैं तुमको नहीं उठाऊँगा।'

'ऊँ…ऊँ…ऊँ…मुझको उठा लीजिए। मुझको उठा लीजिए।'

'सुनो बेटे, तुमको मेरे साथ चलना हो, तो चले चलो, नहीं तो वापस घर चले जाओ।'

'ऊँ…ऊँ…ऊँ। मुझको उठा लीजिए। मेरे पैर दुखने लगे हैं।'

'अच्छी बात है, तो लो, थोड़ी देर के लिए उठा लेता हूँ।'

यह 'अच्छी बात' वाला मामला हमारे अविचार की और हमारी कमज़ोरी की निशानी है। ऐसे माँ-बापों से बालक अपनी मनचाही चीज पा लेता है, और हमारी इस कमज़ोरी को जान लेने के बाद वह उससे लाभ उठाने लगता है। इसलिए हमको शुरू से ही सोच-समझकर 'नहीं' अथवा 'हाँ' कहना चाहिए, और अपनी बात पर मज़बूती से डटे रहना चाहिए। फिर भले ही बालक रोता रहे या फ़र्श पर लोटता रहे। यह सब तो एक बार होकर रह जाएगा।

: 43 :

अगर कोई सिखा दे!

(1)

पिताजी कहते हैं: 'बेटे, ज़रा देखकर चलना। कहीं गिर न जाना।'

माँ कहती हैं: 'देखना भला, कहीं ठोकर न लगे, और खून न निकले।'

काकी कहती हैं: 'यह नटवर तो चलना जानता ही नहीं है।'

बहन कहती हैं: 'बस, नटवर तो ऐसा ही है। यह इसी तरह चलता है, और गिरता-पड़ता रहता है।'

सचमुच धीरे-धीरे नटवर भी यही मानने लगता है कि दरअसल मैं तो ऐसा ही हूँ। मैं चलना जानता ही नहीं हूँ। जहाँ भी जाता हूँ मुझ को ठोकर लगती रहती है।

अगर कोई नटवर को चलना सिखा दे, तो कितना अच्छा हो। सब उसकी ग़लती ही दिखाते रहते हैं। अगर इसके बदले कोई उसको सिखा दें कि इस तरह चलना चाहिए, तो वह चलना सीख जाए।

(2)

'सुनो, जसोदा! ज़रा ठीक से पकड़ो, ठीक से। पहले पकड़ना तो सीख लो!'

'जसोदा! यह कटोरा गिर पड़ेगा, भला! बेटी, ज़रा ध्यान रख कर पकड़ो।'

'जसोदा, जसोदा! देखो, देखो, तुम्हारे हाथ काँप रहे हैं। बस, यह कटोरा अभी गिर पड़ेगा।'

'गिरा, कटोरा गिरा! जसोदा मैं कहती नहीं थी कि कटोरा गिर पड़ेगा और फूट जाएगा। देखो, ये उसके टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं!'

'हे भगवान! इसको कितना ही क्यों न कहो, यह कभी कटोरा पकड़ना सीखेगी ही नहीं।'

धीरे-धीरे जसोदा को विश्वास हो जाता है कि वह कटोरे को अच्छी तरह पकड़ना जानती ही नहीं है। जब पकड़कर चलती है, तो उसके हाथ काँपने लगते हैं। जब काँपते हाथों से वह कटोरे को मज़बूती के साथ पकड़ने की कोशिश करती है, तो हाथ में पकड़ा कटोरा हाथ से छूटकर गिर पड़ता है। तभी सब कहते हैं कि कटोरे को अच्छी तरह पकड़ो!

सभी कहते हैं: 'तुझको कटोरा अच्छी तरह पकड़ना आता ही नहीं है।'

जसोदा सोचती है कि अगर इसके बदले कोई मुझको ठीक से कटोरा पकड़ना सिखा दें तो कितना अच्छा हो ?

'कटोरा अभी गिर जाएगा', कह कर जसोदा की अश्रद्धा को बढ़ाने के बदले, यदि कोई शान्ति के साथ उसको यह समझा दे कि कटोरे को इस तरह पकड़ना चाहिए, और ऐसे चलना चाहिए, तो वह कटोरा पकड़ना सीख जाए। जिस समय जसोदा कटोरा पकड़ने लगे, अगर उस समय उसको कटोरे के गिर जाने का डर कोई न दिखाए, तो जसोदा जरूर ही कटोरा पकड़ना सीख सकेगी।

(3)

माँ कहती हैं : 'इसको यह विषय कभी आएगा नहीं ! मैं तो बहुत पहले से जानती हूँ कि यह कभी पढ़ेगा ही नहीं !'

पिता कहते हैं : 'पढ़ने में इसका मन लगता ही कहाँ है ! मन लगा कर बैठे, तो कुछ सीख-समझ सके।'

बहन भी यही कहती है : 'देखो, मैं कैसे सब समझ लेती हूँ, और तुम क्यों नहीं समझ पाते ? दिन भर किताब लेकर बैठोगे, तो सब-कुछ तुरन्त ही समझ सकोगे।'

शिक्षक भी मुझको मूर्ख और बुद्धू ही कहते हैं। वे कभी यह तो कहते ही नहीं कि कोई चीज़ मुझको भी आती है। उलटे, वे तो कहते हैं : 'बेटे, बहुत पढ़ लिए। भला, अब तुम क्या पढ़ोगे ?'

बच्चा सोचने लगता है : 'सचमुच, मुझको कुछ नहीं आता। किताब लेकर बैठता हूं, लेकिन मन लगता ही नहीं।' बच्चे को बुद्धू कहना छोड़कर अगर कोई उसको समझा दें कि किस रीति से उसको पढ़ना आ सकेगा, तो वह भी पढ़ना सीख सकेगा। लेकिन सब उसको मूर्ख और बुद्धू ही कहते रहते हैं। कोई समझाता ही नहीं कि उसको पढ़ना कैसे आ सकता है। सब उसी को दोषी मानते रहते हैं। नतीजा यह होता है कि बालक अधिक से अधिक मूर्ख बनता जाता है।

(4)

सब कहते हैं : 'यह लल्लू तो बोलना ही नहीं जानता !'

काका कहते हैं : 'बेटे, तुम इस तरह 'तू-तू' की बोली क्यों बोलते हो ? थोड़ा ढंग से बोलना क्यों नहीं सीख लेते ?'

माँ कहती हैं : 'यह तो आम लोगों की गँवारू बोली बोलता है। हलके लोगों की हलकी बोली इसकी जबान पर चढ़ गई है।'

पिताजी कहते हैं : 'अपने इस घर में तुम्हारी तरह जंगली लोगों की बोली बोलने वाला दूसरा कोई है ही नहीं। पता नहीं, तुमने यह बोली कहां सीख ली ?'

भाभी कहती हैं : 'तुम दूर हटो। मुझको तुम अच्छे नहीं लगते। किसी ने तुम को सिखाया भी है कि क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं बोलना चाहिए ?'

लल्लू मन-ही-मन परेशान होता है। वह समझ नहीं पाता कि उसको किस तरह बोलना चाहिए। सब उस पर नाराज़ तो होते हैं, लेकिन कोई उसको यह समझाता नहीं कि सलीके से कैसे बोला जाता है और बोलने का अच्छा तरीका क्या होता है।

यदि कोई उसको सिखा-समझा दें, तो वह भी सलीके से बोलना सीख जाए।

: 44 :

टीकू और बबली

आवाज आई : 'ऊँ...ऊँ...ऊँ...।'

हमारा ध्यान उस तरफ गया। बबली बहन के सिर से खून बह रहा था। बाल भीगे थे। कपड़ों पर खून की बून्दें टपक रही थीं।

पास पहुंचकर उनके पिताजी ने उनको अपनी गोद में उठा लिया। सुलाकर घाव पर कपड़ा दबा दिया और किसी से कहा : 'दौड़कर दवा ले आओ।'

टीकू खिसियाया मुँह लेकर दूर खड़ी-खड़ी देख रही थी। मैंने कहा : 'टीकू ! आओ, यहां आओ। तुम्हारा फेंका पत्थर बबली बहन को लग गया न ?'

टीकू मेरी बेटी है।

टीकू ने सिर हिलाते हुए 'हां' कहा और वह धीमी चाल से मेरे पास आ गई।

मैंने कहा : 'टीकू ! देखो, बबली बहन को चोट कहां लगी है ?'

टीकू बबली के पास पहुंची और गम्भीर भाव से बहते खून को देखती रही। उसके चेहरे से लगा कि उस पर इसका कुछ असर हुआ है।

पट्टी बंध गई। बबली उठकर खड़ी हो गई। मैंने मौका देखकर कहा : 'टीकू, कभी निशाना तकना ही हो, तो वहीं तकना चाहिए, जहां कोई हमारे सामने खड़ा न हो। ऐसा करने से किसी को चोट नहीं लगेगी।'

टीकू ने गम्भीर भाव से मेरी बात सुन ली।

हम अपने-अपने काम में लग गए। थोड़े समय के बाद हमने देखा कि टीकू और बबली दोनों हिल मिलकर खेल रही थीं और वे अपनी पूरी मस्ती में थीं।

इस घटना को लेकर बबली के पिता और मैं आपस में लड़े नहीं, खीझे नहीं, गुर्राए नहीं, दोनों बच्चियों पर नाराज़ नहीं हुए, हमने उनको समझदारी-भरा कोई उपदेश भी नहीं दिया। बस, ऊपर लिखे अनुसार बरताव-भर किया।

उस दिन से दोनों सहेलियों में गहरी दोस्ती हो गई है, और वे हमेशा एक साथ खेलती रहती हैं।

: 45 :

बीड़ी छिपकर क्यों पी ?

मैंने सोचा, इस रतिलाल को सजा देनी ही चाहिए।

मैंने उसको गुपचुप बीड़ी पीते देख लिया था। लेकिन मैं खामोश रह गया। मैं सोचने लगा कि क्या करना चाहिए ?

मुझको अपना बचपन याद आ गया। एक बार मैंने भी बचपन में गुपचुप बीड़ी पी थी। इसलिए पी थी कि पिताजी बीड़ी पीते थे। मैं यह

जानना चाहता था कि आखिर यह बीड़ी कैसी लगती है ? गुपचुप इसलिए पी थी कि पिताजी ने गुपचुप बीड़ी पीने के लिए मेरे बड़े भाई को पीटा था।

रतिलाल के बारे में मुझको क्या करना चाहिए, इस पर विचार करते-करते मुझको एक बात सूझी। मैंने रतिलाल को पुकारा और उससे पूछा : 'बेटे ! आज तुम्हारे मन में बीड़ी पीने की इच्छा क्यों जागी ?'

'पिताजी ! छोटे काका को बीड़ी पीते देखकर मुझको भी लगा कि मैं बीड़ी पीकर देखूं।'

'लेकिन गुपचुप क्यों पी ?'

'यह सोचकर कि आप नाराज़ होंगे।'

'भला, मैं क्यों नाराज़ होता ?'

'जब हम कोई नया काम करते हैं, तो अकसर आप हम पर नाराज़ होते रहते हैं। इसीलिए बीड़ी गुपचुप पी लेने की इच्छा हुई।'

'अगर मैं नाराज न होऊँ, तो तुम क्या करोगे ?'

'उस हालत में गुपचुप नहीं पीऊँगा।'

'पर जो काम तुम प्रकट रूप से करो, अगर वह अच्छा काम न हो, तो तुम क्या करोगे ?'

'उस हालत में आप ही मुझको समझाइए। नहीं तो मुझको तो पता चल ही जाएगा न ?'

'बेटे, अब यह बताओ कि बीड़ी पीना तुमको कैसा लगा ?'

'वैसे, मुझको बीड़ी पीना अच्छा तो नहीं लगा, लेकिन चूंकि मैं छिपकर पी रहा था, इसलिए मुझको उसमें मजा आ रहा था।'

'भला, उसमें मजा क्या था ?'

'मजा तो छिपकर पीने का ही था। मुझको इस बात का भी मजा आ रहा था कि देखो, मैं कितना होशियार हूँ कि सब से छिपा कर बीड़ी पी रहा हूँ। मैं एक ऐसा काम कर रहा हूँ, जिसके लिए सब मना करते रहते हैं। भला, मेरी बराबरी कौन कर सकता है ?'

'तो बेटे, सुनो। मैं तुमको बीड़ी पीने की इजाजत देता हूँ।'

'तब तो बीड़ी पीना मुझ को अच्छा नहीं लगेगा।'

'भला, अच्छा क्यों नहीं लगेगा ?'

'पिताजी ! बीड़ी अच्छी लगने लायक चीज़ है ही कहाँ ? मजा तो उसको गुपचुप पीने में था। मुझको बीड़ी पीनी हो नहीं है। मैंने तो बीड़ी यह जानने के लिए पी थी कि आखिर यह लगती कैसी है ?'

: 46 :

इससे लाभ क्या ?

(1)

मुझको देखकर एक भाई ने अपनी दो बरस की छोटी बच्ची से कहा : 'बेटी, इनको नमस्कार करो, नमस्कार करो, करो करो, करो !'

अपनी छोटी बच्ची के हाथ जुड़वा कर उन्होंने उससे नमस्कार करवाया। बच्ची को इस से कोई लेना-देना था नहीं।

मुझ को लगा : 'इससे लाभ क्या ?'

(2)

मैं देव-दर्शन के लिए गया था। माँ ने अपनी बेटी से कहा : 'बेटी, जय-जय करो, जय-जय करो !' बेटी तो मन्दिर में जल रहे दीये देख रही थी। बच्ची के हाथ पकड़ कर माँ ने जय-जय करवाया। बच्ची ने सिर झुकाकर जय-जय किया। इससे माँ को बड़ी ख़ुशी हुई।

मुझ को लगा : 'इससे लाभ क्या ?'

(3)

रास्ते में मैंने बाप-बेटे को जाते देखा। सामने से एक मित्र आए। मित्र को देखकर बाप ने बेटे से कहा : 'बेटे, सलाम करो, इन भाई जी को सलाम करो, सलाम, सलाम ! देखो, इस तरह सलाम करो !' बेटे को अच्छा तो नहीं, लगा, पर उसने सलाम किया। सलाम करते समय उसका हाथ ढीला था, और चेहरा उतरा हुआ था।

मुझ को लगा, इससे लाभ क्या ?

(4)

मैं अपने एक साथी से मिलने उनके घर पहुँचा। साथी के पास उनकी बेटी बैठी हुई थी। नन्हीं और सुन्दर सलोनी बेटी। उसकी तरफ देखकर मैं मुस्कुराया। बाप ने कहा : 'बेटी, इनको अपना वह श्लोक सुनाओ। वही 'मूकं' वाला श्लोक।' बच्ची बैठी-बैठी मेरी छड़ी के साथ खेल रही थी। बाप ने कहा : 'बेटी, बोलो, श्लोक बोलो ! तुम इनको श्लोक सुना दो।' फिर हम मीठी गोली खाएँगे। बच्ची ने श्लोक सुना दिया।

मुझ को लगा, इससे लाभ क्या ?

(5)

मैं एक वैद्यजी के घर दवा लेने गया। वैद्यजी ने अपने बेटे की प्रशंसा करते हुए कहा : 'अपनी इस उमर में यह सब औषधियों को अच्छी तरह पहचानने लगा है !' वैद्यजी ने अपने बेटे की तरफ देखते हुए कहा : 'बेटे जाओ, कुनैन की शीशी ले आओ।' बेटा कुत्ते के साथ खेल रहा था। वैद्यजी बोले : 'भई, तुम कुनैन ला रहे हो न ? नहीं लाओगे, तो ये भाई कहेंगे कि तुम औषधियों को पहचानते नहीं हो। तुम तो सब औषधियां पहचानने लग गए हो न ?' बेटा कुनैन के बदले सोडे की शीशी ले आया। बाप ने पूछा : 'क्या यह कुनैन है ? ज़रा ध्यान से देखो। लगता है, जल्दी में तुम भूल गए।' बेटा कुनैन की शीशी ले आया। बाप ने कहा : 'शाबाश ! तुम तो बड़े चतुर हो ?'

मुझको लगा, इससे लाभ क्या ?

(6)

एक दिन मैं रामचन्द्र के घर चला गया। रामचन्द्र ने अपने बेटे को बुलाकर उसके साथ मेरी पहचान करा दी, और कहा : 'बेटे, अपना वह नया गाना तो गा दो।' बच्चे को गाना अच्छा नहीं लगा। वह खड़ा रह गया। रामचन्द्र ने कहा : 'बेटे, गाओ। ये तो तुम्हारे काका हैं।'

मैंने कहा : 'रहने दीजिए। बच्चे का मन तो खेलने में है। उसको खेलने दीजिए।'

रामचन्द्र बोले : 'नहीं, वह तो अभी गाएगा। बढ़िया गाना है।' 'क्यों भई, तुम गाते क्यों नहीं हो? अपने बड़ों की बात मानते क्यों नहीं हो?'

मैंने कहा : 'छोड़िए, बच्चा है।'

रामचन्द्र को गुस्सा आ गया। उन्होंने बच्चे को एक चपत मार दी। बोले : 'सुनते नहीं हो?'

बच्चा गाने के बदले रोने लगा।

मैंने सोचा, इससे लाभ क्या?

(7)

एक संस्कारवान दीखने वाले परिवार का मुझ को अनुभव हुआ। मैं बैठा-बैठा बात कर रहा था, इतने में कुछ बालक वहां आ पहुंचे। उनके पल्लों में फूल थे। माँ के मन में उमंग उठी कि बच्चे मुझको फूल दें। माँ ने कहा : 'बच्चो! अपने इन भाईजी को थोड़े-थोड़े फूल दो।'

एक बच्चे ने कहा : 'नहीं माँ, मुझको तो इन फूलों की माला बनानी है।'

माँ बोलीं : 'लेकिन बेटे, अपने घर आए मेहमान को तो हमें फूल देने ही चाहिए। तुम्हारे पिताजी ने तुमको क्या सिखाया है? दे दो, कुछ फूल इनको दे दो! जसोदा, पहले तुम दोगी कि विनोद देगा?'

विनोद दौड़ा और उसने जसोदा के पहले मुझको फूल दे दिए।

मैंने सोचा, इससे लाभ क्या?

(8)

बरसात का मौसम था। मैं अपने लड़के को अपने साथ लेकर घूमने निकला था। रास्ते में पानी बरसा और हम दोनों भीग गए। पास ही में एक मित्र का घर था। हम वहां पहुंच गए। मेरे बच्चे के बदन पर गीले कपड़े देखकर सविता बहन ने सोचा कि वे अपने महेन्द्र का पाजामा और कुरता

उसको पहनने के लिए दे दें। उन्होंने पेटी में से कपड़े निकाले। इसी बीच उनका महेन्द्र वहां आ पहुँचा।

महेन्द्र ने कहा : 'मां! ये तो मेरे कपड़े हैं। मैं इनको पहनूंगा।'

मां बोलीं : 'बेटा, तुम तो अपने कपड़े पहने ही हो।'

महेन्द्र ने कहा : 'लेकिन ये कपड़े तो मेरे हैं। मुझको पहनने हैं।'

मां बोलीं : 'तुम्हारे पास तो ढेर सारे कपड़े हैं।'

महेन्द्र ने कहा : 'मां, ये कपड़े मुझको दे दो। ये मेरे हैं।'

मां बोलीं : 'बेटे, ऐसा भी कहीं होता है? देखो, यह कितना बुरा लगता है? हमको अपने सूखे कपड़े इस बच्चे को देने चाहिए न?'

महेन्द्र ने कहा : 'नहीं, मैं नहीं दूंगा।'

मां परेशान हो उठीं। उन्होंने अन्दर से अपने नौकर को बुलाया और कहा : 'इसको जरा बाहर ले जाओ।'

और, महेन्द्र रोता-रोता बाहर गया!

मैंने सोचा, भला, इससे लाभ क्या?

: 47 :
कौन-सी मुन्नी अच्छी?

(1)

मेरी मुन्नी! ओहो, कितनी समझदार है! अपने घर का एक भी खिलौना पड़ोसी के घर जाने नहीं देती है। उलटे, कभी पड़ोसी के घर जाती है, तो वहां से एकाध खिलौना उठा लाती है!

बहन मेरी यह मुन्नी तो ग़ज़ब की होशियार है! घर की कोई बात कभी किसी से कहती ही नहीं। कोई पूछता है, तो उलटा ही जवाब देती है!'

बहन, इसमें तो ग़ज़ब की समझ है। पराए सो पराए, और अपने सो अपने। यह अपने-पराए का पूरा भेद समझती है।

बहन, इसकी चतुराई की तो क्या बात कहूँ ? हम इससे कहते हैं कि काकी माँ से कह देना कि घर में कोई नहीं है, तो यह ऐसे धीर-गम्भीर भाव से कहती है कि सुनने वाले को इसकी बात सच ही लगती है !

(2)

बहन, मेरी इस मुन्नी को तो किसी बात का कोई होश है ही नहीं। इसके लिए ढेर सारे खिलौने आए, लेकिन इसने अपने सब खिलौने अपने संगी साथियों को दे दिए।

बहन, हमारी यह मुन्नी तो बिलकुल बुद्धू ही है। यह कुछ समझती ही नहीं। यह घर की बातें बाहर कहती रहती है। यह जानती ही नहीं कि कौनसी बात पेट में रखी जाए और कौन-सी बाहर वालों से कही जाए।

बहन, हमारी यह मुन्नी तो बिलकुल ही गँवार है। यह जानती ही नहीं कि क्या तो अपना है और क्या अपना नहीं है। कोई घर पर आता है, तो यह प्रेम से उसका स्वागत करती है और आने वाला जो चीज़ मांगता है, वह चीज़ उसको दे देती है।

बहन, हमारी यह मुन्नी तो एकदम भोली है। यह तो झूठ बोलना जानती ही नहीं। जो इसके मन में होता है, वही इसके मुंह से निकलता है। उलटे यह तो अपने पड़ोसियों के सामने हमको झूठ, ठहरा देती है।

: 48 :

किसलिए ?

माँ ने मुझको घर के बाहर निकाल दिया, भला माँ ने मुझको क्यों निकाला ? मैं तो माँ से कहने गई थी कि मुझको एक कांच मिला है। क्या यह बात माँ से कही नहीं जा सकती ?

पिताजी मुझ पर गुस्सा हुए। किसलिए गुस्सा हुए ? मैं तो उनको यह दिखाने गई थी कि मैंने स्याही से कैसे चित्र बनाए हैं। क्या पिताजी को चित्र नहीं दिखाए जा सकते ?

माँ ने मुझको पीटा। किसलिए पीटा ? मैं साबुन के झाग बना रही थी और झागों में लाल-पीले रंग देख रही थी। क्या लाल-पीले रंग नहीं देखने चाहिए ?

पिताजी ने मुझको पापी कहा। भला, उन्होंने मुझको पापी क्यों कहा ? कितनी बढ़िया तितली थी ! मैं तो उनको तितली दिखाने गया था। भला, पापी किसको कहा जाता है ?

माँ ने मुझको लड़की कहा ! भला, किसलिए लड़की कहा? यह देखने के लिए कि वे कैसी लगती हैं, मैंने अपने हाथों में कुछ चूड़ियां पहन लीं। मुझको वे अच्छी लग रही थीं। लेकिन चूड़ियां पहन लेने से मैं लड़की कैसे बन गया ?

पिताजी ने मुझको मूर्ख कहा। उन्होंने मुझको मूर्ख किसलिए कहा ? मुझको गाना अच्छा नहीं लगा, तो मैंने नहीं गाया। क्या जबरदस्ती गाना किसी को अच्छा लगता है ? क्या न गाने वाले को मूर्ख कहा जाता है ?

भाई ने मुझको धक्का मारा। भला, उन्होंने मुझको धक्का क्यों मारा ? मैंने उनसे कहा कि चलो, हम खेलने चलें। उनको न खेलना हो, तो भले ही न खेलें, पर इसके लिए वे मुझको धक्का क्यों मारें ?

बहन ने कहा, दूर हटो। बहन ने मुझको दूर हटने के लिए क्यों कहा ? मैं तो वहाँ खड़ी थी और चींटियों को देख रही थी। मुझको और कहीं जाना नहीं था। फिर भी उन्होंने मुझको दूर हटने के लिए क्यों कहा ?

: 49 :

लेकिन मैं मना जो कर रही हूं !

रंजन : 'माँ, पिताजी ने कहा है कि आलमारी में से गुड़िया निकालकर उसके साथ खेलो।'

माँ : 'लेकिन मैं मना जो कर रही हूँ ! यह कोई खेलने का समय नहीं है।'

मोहन : 'मां, पिताजी ने कहा है कि हम रेत के उस ढेर पर जाकर खेलें।'

मां : 'लेकिन मैं मना जो कर रही हूँ। भला, रेत के उस ढेर पर खेलना ही क्या था ?'

रंजन : 'मां ! पिताजी ने कहा है कि लोटा लेकर नल से पानी भरते रहो।'

मां : 'लेकिन मैं मना जो कर रही हूँ। इस समय यह और क्या सूझ गया ? दूसरा कोई काम है या नहीं ?'

मोहन : 'मां ! पिताजी कहते हैं, जसोदा बहन के घर खेलने जाओ।'

मां : 'लेकिन मैं मना जो कर रही हूँ। इस समय किसी के घर कहीं जाना नहीं है।'

: 50 :
मैं नहीं बोलूंगा

(1)

मैं अम्माजी से नहीं बोलूंगा

अम्माजी कहती हैं : 'मैं तुझको पूरी नहीं बेलने दूंगी। तू टेढ़ी-मेढ़ी बेलता है।'

कुछ टेढ़ी-मेढ़ी तो बनेंगी ही। मैं तो अभी बच्चा हूँ।

अम्माजी कहती हैं : 'मैं तुमको पानी नहीं भरने दूंगी। तू पानी फैलाता है।'

कुछ पानी तो फैलेगा ही न ? मैं तो अभी बच्चा हूँ।

अम्माजी कहती हैं : 'मैं तुझको साग नहीं संवारने दूंगी। छुरी जो लग जाती है।'

कभी-कभी छुरी लग भी जाती है। मैं तो अभी बच्चा हूँ न ?

अम्माजी कहती हैं : 'मैं तुझको साबुन नहीं लगाने दूंगी। तू अभी साबुन लगाना जानता नहीं।'

'मैं पूछता हूँ : 'तो बिना लगाए साबुन लगाना आएगा कैसे ? मैं तो अभी बच्चा हूँ।

मैं अम्माजी से नहीं बोलूंगा !

(2)

मैं बाबूजी से नहीं बोलूंगा

बाबूजी कहते हैं : 'मैं तुझको किताब नहीं दूंगा। किताब फट जाएगी।'

मैं कहता हूं : 'मैं किताब नहीं फाड़ूंगा।' फिर भी बाबूजी मना कर देते हैं।

बाबूजी कहते हैं : 'मैं तुझको कलम नहीं दूंगा। कलम टूट जाएगी।'

मैं कहता हूँ : 'मैं बहुत खबरदारी के साथ लिखूंगा।' फिर भी बाबूजी मना कर देते हैं।

बाबूजी कहते हैं : 'तुम यहां से भाग जाओ। तुम बहुत गड़बड़ करते हो ?' मैं कहता हूं : 'हम गड़बड़ नहीं करेंगे।' फिर भी बाबूजी हमको भगा देते हैं।

मैं बाबूजी से नहीं बोलूंगा !

: 51 :
समझते हैं कि —

माँ समझती हैं कि मैं बिलकुल नासमझ हूं। बात बिलकुल झूठी है। माँ को बुखार नहीं आया था, फिर भी उन्होंने काकी से कहा था : 'मुझको बुखार आया है, इसलिए मैं घूमने नहीं चल सकूंगी।'

पिताजी समझते हैं कि मैं बिल्कुल नादान बच्चा हूँ। उनका यह समझना भी ग़लत है। उनसे मिलने को आए एक भाई से उन्होंने कहा था : 'कल तो मैं दूसरे गांव गया था। अच्छा हुआ कि कल आप नहीं आए।' पिताजी तो कल सारे दिन घर पर ही रहे थे।

माँ समझती हैं कि मैं बिलकुल भोला हूँ। बात झूठी है। जिस समय मैं बाहर गया हुआ था, उसी समय माँ ने मेरे हिस्से की चीज में से थोड़ी चीज़ बहन को दी थी, और मुझको कहा था : 'यह तो इतनी ही थी।'

पिताजी समझते हैं कि मैं सच बोलता हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि मैं कितनी झूठी गपें हांकता रहता हूँ ! मैं पिताजी को ठगना जानता हूँ।

माँ समझती हैं कि सारा दोष गली में रहने वाले लड़कों का ही होता है। भला, माँ क्या जानें कि मैं गली के एक-एक लड़के का सिर फोड़ कर घर लौटता हूँ !

पिताजी समझते हैं कि मैं पढ़ने में होशियार हूँ, और अपनी कक्षा में पहला रहता हूँ। पिताजी भले ही समझते रहें। लेकिन सच बात तो मैं ही जानता हूँ कि सवालों के सही जवाब मैं नक़ल करके देता रहता हूँ।

माँ समझती हैं कि मैं बिलकुल निर्दोष हूँ। सारा दोष बहन का ही है। लेकिन सच बात तो मैं जानता हूँ। बहन को चुपचाप चिकोटते रहने का काम तो मैं ही करता हूँ।

पिताजी समझते हैं कि नौकर पैसे ले गया ! भला, नौकर पैसे कैसे ले जाता ? पैसों से तो बरफ़ खरीदी गई और खाई भी गई !

माताजी और पिताजी कुछ भी समझते रहें, लेकिन मैं न तो कोई नादान बच्चा हूँ, और न नासमझ ही हूँ। मैं भोला भी नहीं हूँ और निर्दोष भी नहीं हूँ। मैं जो हूँ, सो हूँ। आखिर तो मैं अपने माँ-बाप का ही बेटा हूँ न ?

: 52 :

अब मैं किसी से कुछ पूछूंगी ही नहीं !

मैंने माँ से कहा : 'माँ, देखो तो, यह इल्ल कैसी टेढ़ी-मेढ़ी चल रही है ?'

माँ बोलीं : 'तुम इस इल्ल को फेंक दो ! भला, हम इल्ल को कैसे छू सकते हैं ?'

मैंने पिताजी से कहा : 'पिताजी देखिए, मैंने ये अंक लिखे हैं।'

पिताजी बोले : 'अरे भई, ये सब तो शून्य हैं। तुमको अभी अंक लिखना आता ही कहाँ है ? तुम तो मूर्ख हो !'

मैंने बड़े भैया से कहा : 'लल्लू भैया, देखिए, मैंने ये फूल कितनी अच्छी तरह सजाए हैं !'

लल्लू भैया बोले : 'अरे, इनको तो तुमने बहुत ही भद्दे ढंग से सजाया है। क्या फूल ऐसे सजाए जाते हैं ?'

मैंने बहन से कहा : 'देखो, बहन, मैंने यह कटोरी कितनी अच्छी माँजी है ! मैंने इसको खूब रगड़-रगड़ कर माँजा है।'

बहन बोलीं : 'भई इस पर तो अभी दाग़ रह गए हैं। क्या कटोरी इस तरह माँजी जाती है ?'

मैंने जमुना काकी से कहा : 'काकी जी, देखिए, आज मैंने अपने बाल कैसे सँवारे हैं। इनको मैंने अपने हाथों ही सँवारा है।'

काकी बोलीं : 'तुम इतनी बड़ी हो चुकी हो, लेकिन तुमने अभी तक अपने बाल सँवारना सीखा ही नहीं है। ज़रा आईने में अपना मुँह तो देखो !'

मैंने भूरू भैया से कहा : 'देखिए, भूरू भैया ! मैंने इस काग़ज़ को कितने अच्छे ढंग से कोरा है !'

भूरू भैया बोले : 'भई, यह काम तो हर कोई कर लेता है। तुमने इस में नया क्या किया है ? इसमें किसी को दिखाने लायक़ है ही क्या ?'

सब मुझको ऐसे ही जवाब देते रहते हैं। अब मैं किसी से कुछ पूछूँगी ही नहीं।

: 53 :

पूत के पाँव पालने में

डॉक्टर काणे एल. एम. एण्ड एस. हैं। अपने बचपन में वे बोतलों में पानी भरने और धूल की पुड़ियायें बनाने का काम किया करते थे। डॉक्टर का खेल खेल कर वे अपने साथी बच्चों को दवा दिया करते थे।

श्री नृसिंह प्रसाद कालिदास भट्ट एम. ए., एस. टी. सी. डी. हैं। वे एक शिक्षा-शास्त्री हैं। अपने बचपन में वे पाठशाला का खेल खेला करते थे। वे बच्चों को इकट्ठा करके शिक्षक की तरह उनको पढ़ाया करते थे। वे बच्चों को अलग-अलग कक्षाओं में बैठाते थे। वे उनसे गीत गवाते थे और उनको लिखना सिखाते थे।

स्वामी अजरामर जी एक परमहंस थे। बहुत बचपन में वे सबके साथ खेलने जाते थे, और वहाँ बाबा-बैरागी के खेल खेलाते थे। लँगोटी पहनकर बाबाजी बनते थे।

श्रीमान् एच. सी. कई वर्षों से अमेरिका में रहते हैं। अपने बचपन में वे साहब बनते थे। साहब बनकर शिकार खेलने के खेल खेला करते थे। झूठ-मूठ ही चुरुट पीते थे, और बड़े रौब के साथ गिट पिट अंग्रेज़ी बोला करते थे।

* * *

शिक्षा-शास्त्रियों का विचार है कि खेल-कूद के ज़रिए बालक अपने असल स्वरूप को प्रकट करते रहते हैं। इस लेख के आरम्भ में दिए गए उदाहरण इस बात का समर्थन करते-से लगते हैं। बीज में मनुष्य बैठा है। यदि बीज को उसके बचपन से ही पहचान लेने की समझ हम में आ जाए, तो हम उसके उगने में उसकी उचित सहायता कर सकते हैं। हम बालकों के खेल देखते रहें, और वहीं से यह समझने का प्रयत्न करें कि असल में वे कौन हैं। उनके मूल स्वरूप को पहचान कर हम उनके लिए ऐसी अनुकूलता कर दें कि जिससे वे उत्तम मनुष्य बन सकें।

: 54 :

मन में उमंग उठी

आपके मन में उमंग उठी है कि हमको अपने बालकों के लिए कुछ करना तो चाहिए। यदि आप कोई एक ही काम करना चाहते हैं, तो क्या करेंगे?

बच्चों को मारना-पीटना छोड़ दीजिए।

मान लीजिए कि आप कोई दो काम करना चाहते हैं तो क्या करेंगे?

बालकों को डाँटिए-डपटिए मत। बालकों का अपमान मत कीजिए।

मान लीजिए कि आप कोई तीन काम करना चाहते हैं, तो सोचिए कि आप क्या करेंगे?

बालकों को डराइए मत। बालकों को लालच देकर समझाइए मत। लल्लो-पत्तो कर के बालकों को सिर पर चढ़ाइए मत।

मान लीजिए कि आप बालकों के लिए कोई चार काम करना चाहते हैं, तो सोचिए कि आप क्या करेंगे?

बालकों को बार-बार उपदेश मत दीजिए। उनको बार-बार के लाड़-चाव से और प्यार-पुचकार से बचा लीजिए। उनको बार-बार उसके दोष मत दिखाइए। उन पर बार-बार अपना रौब मत जमाइए।

मान लीजिए कि आप कोई पाँच काम करना चाहते हैं, तो सोचिए कि क्या करेंगे?

बालक जो काम आप से करवाना चाहे उसको आप मत कीज़िए, बल्कि बालक को वह काम करना सिखा दीजिए। बालक जो कुछ भी करना चाहे, सो सब उसको करने दीजिए। बालक के काम को हलका मत मानिए। बालक के काम में दखल मत दीजिए। बालक से उसका काम मत छीनिए।

: 55 :

मुझको यह पसन्द नहीं

मुझको यह पसन्द नहीं कि बाबूजी अम्माजी पर नाराज़ होते रहें, और अम्माजी बाबूजी का मुँह नोचती रहें।

मुझको यह पसन्द नहीं कि बाबूजी ठाठ से बैठे रहें, और अम्माजी दिन भर काम करती रहें।

मुझको यह पसन्द नहीं कि अम्माजी बैठी-बैठी किताबें पढ़ती रहें, और बाबूजी घर का सारा काम करते रहें।

मुझको यह पसन्द हीं कि अम्माजी मेरा पक्ष लें, और बाबूजी मुझ पर नाराज़ हों।

मुझको यह पसन्द नहीं कि बाबूजी मेरा पक्ष लें, और अम्माजी मुझ पर नाराज़ हों।

मुझको यह पसन्द नहीं कि अम्माजी बहन से काम करवाती रहें, और मुझसे कहें कि मैं अपना सबक़ याद करूँ।

मुझको यह पसन्द नहीं कि बाबूजी बहन को खेलाते रहें, और मुझको काम बताते रहें।

मुझको यह भी पसन्द नहीं कि अम्माजी मुझको तो समझदार मानें, और बहन को गालियाँ देती रहें।

: 56 :

माँ ! मुझको दाड़िम दो !

'मां ! मुझको दाड़िम दो।'

'नहीं दूंगी। तुमको बुखार चढ़ा है। दाड़िम खाने से तुमको सरदी हो जाएगी।'

'ऊँ...ऊँ...ऊँ। मुझको दाड़िम दो, दाड़िम, दाड़िम, दाड़िम !'

'मैं दाड़िम नहीं दूंगी। तुमको रोना हो, तो रोओ, और न रोना हो, तो मत रोओ... ।'

'ऊँ...ऊँ...ऊँ... ।'

'सुनो, तुमको रोना ही है, तो तुम बाहर चले जाओ। एक तरफ तुमको बुखार है। दूसरी तरफ तुमको दाड़िम खाना है और दाड़िम के न मिलने पर जोर-जोर से रोना है।'

छोटू बाहर जाकर रोने लगा।

माँ के मन में दया जागी।

'छोटू, सुनो, इधर आओ।'

'मुझको दाड़िम दो। ऊँ...ऊँ...ऊँ... ।'

'तुम यहां तो आओ। देखो, मैं तुमको दो दाने दूंगी।'

'ऊँ ऊँ...ऊँ। नहीं मुझको पूरा दाड़िम दो।'

पूरा नहीं दूंगी। तुम्हारी बीमारी बढ़ जाएगी। लो, ये दो दाने खा लो।'

'ऊँ....ऊँ....ऊँ। मुझ को पूरा दो।'

'लो, यह लो। बस, अब और नहीं दूंगी।'

'माँ, थोड़े दाने और दे दो। बाद में मैं नहीं माँगूंगा।'

'तो लो, अब और कितना लोगे ? अब तो मैं तुम को एक भी दाना नहीं दूंगी।'

छोटू ने दाड़िम खा लिया।

'ऊँ...ऊँ...ऊँ। माँ, मुझको पूरा एक टुकड़ा दे दो। इस लल्लू को तुमने कितना ज्यादा दिया है ?'

'लेकिन लल्लू तो अच्छा-भला है, और तुम तो बीमार हो। तुमको और नहीं मिलेगा !'

'ऊँ...ऊँ...ऊँ। तुम मुझको नहीं देती हो, और लल्लू को देती रहती हो।'

'बेटे मेरे ! तुम इतना दाड़िम खा चुके हो, फिर भी तुम्हारा रोना-रूठना जारी ही है। सुनो, अब तो मैं तुमको एक भी दाना नहीं दूंगी।

'ऊँ...ऊँ...ऊँ'

'अब तुम बाहर जाकर रोने बैठो। मैं अब तुमको बुलाऊँगी ही नहीं।'

छोटू रोने लगा।

माँ को फिर दया आ गई।

'लो छोटू ! यह इतना दाड़िम और बचा है। यह सब का सब मैं तुमको दे रही हूं। तुम इसको खा लो।'

दाड़िम खा लेने के बाद छोटू ने कहा : 'माँ, देखो वहाँ पनियारे पर वह दाड़िम रखा है, और तुम कह रही हो कि तुमने मुझको सब दे दिया है ? मुझ को पूरा दे दो।'

'बेटे, तुम तो बड़े ही चीमड़ हो। अब तो मैं तुमको एक भी दाना नहीं दूंगी। तुमको रोना हो तो तुम रोते रहो।'

इतना दाड़िम खा लेने बाद भी छोटू का रोना तो जारी ही रहा।

इसका कारण क्या ?

कारण है, छोटू की माँ की कमजोरी।

ऐसी स्थिति में छोटू को देने या न देने का विचार पहले से ही कर लेना चाहिए। फिर जितना देना हो, उतना ही देना चाहिए। तिस पर भी अगर बालक रोता रहता है, तो उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। पसीजना नहीं चाहिए। बालक को विश्वास हो जाना चाहिए कि अब उसकी बात

सुनी नहीं जाएगी। इसमें बीमार बालक को दुख देने की कोई बात नहीं है। उसको तो प्रसन्न ही रखना है। पर उसको ऐसी चीज देकर तो प्रसन्न रखना ही नहीं है, जिससे वह फिर बीमार पड़ जाए। अधिक अच्छा तो यह हो कि बालक को किसी दूसरे काम में लगाकर उसको रोने से बचा लिया जाए।

: 57 :

आपको मदद की ज़रूरत नहीं थी

(1)

चार साल की नन्हीं विजया मेरे पास बैठकर जीम रही थी। थाली में खिचड़ी थी और खिचड़ी में घी परोसा था। विजया ने खिचड़ी के सामने देखा। हाथ बढ़ाकर वह खिचड़ी को घी के साथ गूंधने लगी। घी इधर-उधर बहने लगा। विजया ने एक-दो बार अपना हाथ खींच लिया।

मैंने सोचा कि विजया को खिचड़ी में पड़ा घी मिलाना आता नहीं है। गरम खिचड़ी से उसका हाथ जलता लगता है। इसलिए मैंने चट से अपना हाथ बढ़ाकर खिचड़ी गूंध दी। खिचड़ी हाथ जलने लायक थी ही नहीं।

विजया का मुँह उतर गया। मुझको लगा, मानो वह कर रही है: 'यह काम तो मुझको ही करना था। आपने क्यों कर दिया? मैं तो यह काम करना जानती थी। मुझको आपकी मदद की ज़रूरत नहीं थी।'

(2)

रात हम सब गादी-गुदड़ी बिछा रहे थे। बड़ी-बड़ी खटियायें मैंने बिछा दीं। मैं उन पर गादियाँ बिछा रहा था। सरला अपनी छोटी गुदड़ी उठाकर चली। उसने गुदड़ी को जैसे-तैसे अपने सिर पर रख लिया था।

मैंने सोचा कि गुदड़ी सरला से उठेगी नहीं और उसकी गरदन मुड़ जाएगी। मैंने गुदड़ी उठा ली। मुझको अच्छा लगा। मैंने माना था कि नन्हीं सरला से यह काम नहीं हो सकेगा।

पर सरला ठिठक कर खड़ी हो गई। वह मुँह लटका कर अपनी माँ के पास बैठ गई। मुझको लगा, मानो वह चुपचाप कह रही है: मैं तो गुदड़ी उठा

लेती हूँ। मुझको अपनी गुदड़ी उठानी थी। आपकी मदद की ज़रूरत मुझको थी ही नहीं।'

(3)

दो साल का बिन्दु घुटनों के बल चल रहा था। वह सारे दिन घुटनों के बल चलता ही रहता है। न जाने कितनी बार वह पूरे घर के चक्कर लगा लेता है।

एक बार वह एक कुरसी के पास आया। हाथ फैलाकर वह कुरसी का सहारा लेने लगा। एक बार कुरसी तक उसका हाथ पहुँच नहीं पाया, और वह ज़रा खिसक पड़ा। उसको कोई चोट नहीं लगी थी। वह फिर खड़ा हुआ और कुरसी पकड़ने लगा। वह फिर खिसक गया। चोट तो लगी नहीं थी। वह फिर खड़ा हुआ और कुरसी की तरफ बढ़ा।

मैंने सोचा कि वह कुरसी पर बैठना चाहता है। बड़ी देर से वह इसके लिए छटपटा रहा है। क्यों न मैं इसको उठाकर कुरसी पर बैठा दूं? मैंने उसको उठा लिया और कुरसी पर बैठा दिया।

बिन्दु का मुँह फूल गया। कुरसी से फिसलकर वह नीचे आ गया और जिस तरह खुद चढ़ना चाहता था, उसी तरह फिर चढ़ने लगा, और इस बार तो वह खुद ही चढ़कर बैठ गया। उसने बिना कुछ कहे ही मुझको कह दिया: 'मैं खुद चढ़ना चाहता था। आपने मुझको क्यों चढ़ाया? मुझको आपकी मदद की ज़रूरत नहीं थी।'

(4)

शाम के समय हम सब हवाखोरी के लिए निकले। हममें बड़े भी थे, और बच्चे भी थे। ढाई-तीन साल की नन्हीं सुधा भी थी। सब चल रहे थे। सबके साथ सुधा भी चल रही थी।

कुछ दूर जाने के बाद सुधा की माँ ने कहा: 'इस सुधा को गोद में ले लीजिए। यह थक गई होगी।

जब मैंने उसको अपनी गोद में उठा लिया, तो वह अपने पैर तड़फड़ाने लगी। उसका मुँह रुआँसा हो गया। वह मेरे हाथों में से फिसलने लगी और पत्थर की तरह भारी हो गई।

सबने कहा : 'भई इसको चलना है, तो चलने दीजिए। जब थकेगी, तो अपने आप रुक जाएगी।'

सुधा नीचे उतरकर दौड़ने लगी। ऐसा लगा, मानो पीछे मुड़कर वह कह रही हो : मैं तो अभी थकी नहीं हूँ। मुझको तो अभी और चलना था। आपकी मदद की कोई ज़रूरत मुझको थी नहीं।'

(5)

लक्ष्मण कोई छह-सात साल का था। पट्टी और पेन लेकर लिखने बैठा था। बार-बार पट्टी पर कोई चीज़ बनाता था, और फिर उसको मिटा देता था।

मैंने सोचा कि यह कर क्या रहा है? पास जाकर देखने पर पता चला कि वह कुछ लिखने की कोशिश में लगा है।

मैंने पूछा : 'लक्ष्मण! तुम क्या लिख रहे हो?'

लक्ष्मण बोला : 'जी, मैं 'इ' लिख रहा हूँ।'

मैंने कहा : ' 'इ' लिखने में इतनी देर क्यों लग रही है?'

यों कहकर मैंने उसका हाथ पकड़ा और पेन घुमवा कर पट्टी पर 'इ' लिखवा दी। कहा : 'तुमने देखा? 'इ' इस तरह लिखी जाती है। तुम भी इसी तरह लिखो।'

लक्ष्मण मेरे मुँह की तरफ देखता रहा। फिर उसने कहा : 'ऐसी 'इ' लिखना तो मैं बहुत पहले से जानता हूँ। लेकिन हमारे विद्यालय के गत्ते पर जो 'इ' बनी है, वैसी बढ़िया 'इ' लिखने का अभ्यास मैं कर रहा था। यह 'इ' तो मैं खुद ही लिख लेता। मुझको आपकी मदद की ज़रूरत नहीं थी।'

: 58 :

कौनसी पढ़ाई सच्ची?

लड़के ने पट्टी, पेन और पुस्तक निकाली।

शिक्षक ने इतिहास पढ़ाया। लड़के ने पढ़ा : अकबर का बाप हुमायूँ था। औरंगज़ेब सन् 1707 में गुजर गया।

शिक्षक ने भूगोल पढ़ाया। लड़के ने पढ़ा : भावनगर से बम्बई पाँच सौ मील दूर है। साबरमती नदी के किनारे अहमदाबाद शहर बसा है।

शिक्षक ने गणित पढ़ाया। लड़के ने पढ़ा : छह आदमी एक गाड़ी में बैठे हैं। हर आदमी के पास 345 रुपए हैं, तो बताओ कि सबके पास मिलाकर कितने रुपए हुए?

शिक्षक ने कविता सिखाई। लड़के ने कविता सीखी। वह बोला : 'हे प्रभो! आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिए!'

पढ़ाई का समय पूरा हुआ। विद्यालय की छुट्टी हुई। लड़का अपने घर गया। शिक्षक अपने घर पहुँचे।

❀ ❀ ❀

रात का भोजन निपट चुका था। सबको फ़ुरसत थी।

पिता ने चर्चा शुरू की। बच्चा कान लगाकर ध्यान से सुनने लगा।

पिता ने महाभारत की कथाएँ सुनाईं। उन्होंने बड़े दादाजी के पराक्रमों की बातें कहीं। पिता ने इतिहास सिखाया।

बच्चे ने सोचा : 'ओह हो! हमारे बाप-दादे ऐसे थे? अर्जुन तो बहुत ही बहादुर था।'

फिर पिता ने बताया कि बड़ौदा शहर में उन्होंने क्या-क्या देखा। एक बार पिता नर्मदा के किनारे घूमे थे। उन्होंने नर्मदा की बातें कहीं। पिता ने भूगोल सिखाया।

बच्चे ने सोचा : 'यह बड़ौदा शहर तो देखने लायक है।'

बच्चे के मन में विचार जागा : 'जब मैं बड़ा हो जाऊँगा, तो नदियों के किनारों पर घूमूँगा और पहाड़ों की सैर करूँगा। वहाँ तो ढेर-की-ढेर चीज़ें देखने को मिलेंगी।'

बाद में पिता ने मनके निकाले और कहा : 'आओ, हम माला बनाएँ। हर एक माला में 108 मनके रहेंगे।'

तीन जने बैठे थे। हर एक ने 108 मनके गिन लिए, और फिर सबने मनकों को धागों में पिरो लिया।

पिता ने गणित का रस भी चखा दिया।

बच्चा बोला : 'पिताजी कल फूलों की मालाएँ बनानी है। एक-एक माला पाँच पाँच सौ फूलों की बनाएँगे।'

इस बीच रात बहुत बढ़ चुकी थी। आसमान में चाँद चमकने लगा था। धरती पर चाँदनी फैली हुई थी। पेड़-पौधे दूध से नहा रहे थे। पिता ने कहा : 'देखो, देखो, यह सब कितना सुन्दर लग रहा है! यह कितना भव्य है! कितना महान् है!'

पिता ने कविता सीखा दी।

बच्चा बोला : 'पिताजी, मुझको यह सब देखना बहुत अच्छा लग रहा है। मन होता है कि बस, यहीं लेटे रहें। अगर इसका चित्र बनाया जाए, तो वह कैसे बनेगा? भला इन सब को कौन बनाता होगा?'

: 59 :

गुरुजी, यह मुझको याद नहीं रहता

विट्ठल बढ़ई था। अपनी छोटी उमर में ही वह बसूला चलाना और करवत खींचना सीख गया था। लेकिन विट्ठल को इतिहास और भूगोल की बातें याद रहती ही नहीं थीं। बेचारा रट-रट कर थक जाता था।

सबक़ याद न होने पर शिक्षक लड़कों को या तो गालियाँ देते या मारते-पीटते। पर विट्ठल को तो गालियाँ भी मिलती और मार भी पड़ती। शिक्षक विट्ठल को अँगूठा पकड़ने की सजा देते, और ऊपर से उसकी पीठ पर ज़ोर का एक घूँसा भी मारते।

बेचारा विट्ठल रोने लगता, और कहता : 'गुरुजी! यह मुझको याद नहीं रहता।'

विट्ठल कभी इतिहास सीख ही नहीं सका। विट्ठल बढ़ईगीरी के सारे काम सीख गया। आज वह एक अच्छा बढ़ई बन गया है। बढ़इयों का सरदार बना है।

विट्ठल के पिताजी उसको काम करने और सीखने के मौक़े देते थे। शिक्षक उसको पढ़ाते थे और पीटते थे।

: 60 :

टहे

कुन्दन मेरे पास अंग्रेजी सीखने बैठा। मैंने कहा : 'पढ़ो, क्या लिखा है।'

कुन्दन ने पढ़ा : 'टहे।'

मैंने सोचा : 'अंग्रेजी में तो ऐसा कोई शब्द और उच्चारण है ही नहीं।'

मैंने पुस्तक देखी। उसमें the (टी-एच-ई—दी) लिखा था।

मुझको लगा : 'ये तो गणपति ही उलटे बैठे हैं। कुन्दन अंग्रेजी शायद ही सीख पाए।'

बाद में मैंने कुन्दन को अंग्रेजी पढ़ाना शुरू किया। अपनी सारी कोशिशों के बाद भी वह अंग्रेजी सीख नहीं पाता था। अंग्रेजी सीखते समय उसकी आँखों में आँसू आ जाते। वैसे कुन्दन खेल-कूद का शौक़ीन था। वह स्वभाव से बहुत विनोद-प्रिय भी था। लेकिन अंग्रेजी के समय में वह एकदम बदल जाता था। वह गाय की तरह ग़रीब बन जाता था और अधमरा-सा लगने लगता था।

लेकिन आख़िर गिरता-पड़ता कुन्दन अंग्रेजी की चौथी कक्षा में पहुँच गया।

डायरेक्टर साहब पधारने वाले थे। विद्यार्थियों को 'रेसीटेशन्स' (Recitations) तैयार करने थे। कुन्दन को भी रटा हुआ पाठ बोलना था। कुन्दन ने रटना जो शुरू किया, तो वह बराबर रटता ही रहा।

डायरेक्टर साहब पधारे। रेसीटेशन हुए। कुन्दन के काम की बड़ी सराहना हुई। उच्चारण और कण्ठ के लिए कुन्दन की स्तुति की गई। कुन्दन को पहला इनाम मिला। कुन्दन खुश हुआ। शिक्षक भी खुश हुए। डायरेक्टर साहब ने निरीक्षण-बही में कुन्दन के और विद्यालय के काम की प्रशंसा की।

ये सब लोग खुशी-खुशी अपने-अपने घरों की तरफ गए।

कुन्दन को इनाम मिला। शिक्षक का वेतन बढ़ा। किन्तु मेरा मन तो खिन्न हो उठा। मेरे लिए तो जबरदस्ती के साथ, सिर खपाकर अंग्रेजी पढ़ाते

रहने का ही काम कायम रहा, और मेरी चिन्ता बढ़ी। इसी तरह कुन्दन की अयोग्यता और अरुचि भी ज्यों की त्यों बनी रही।

रेसीटेशन में कुन्दन पहला रहा, लेकिन अंग्रेजी की पढ़ाई में तो वह फिसड्डी ही बना रहा।

: 61 :

ऐसी आदत है ही नहीं

'चम्पा बहन, जरा देखिए, कहीं आपका छोटू खेलते-खेलते हमारे नटवर का लट्टू तो यहां नहीं न ले आया है ?'

'नहीं रूपा बहन ! मेरे छोटू की ऐसी कोई आदत है ही नहीं। वह कभी किसी की चीज़ कहीं से लाता ही नहीं है ?'

* * *

'रायचन्द भाई ! आप जरा अपने छोटू को समझा दीजिए ! वह आज हमारी चम्पा पर थूक रहा था।'

'नहीं, लक्ष्मीचन्द भाई, नहीं। मेरे छोटू की ऐसी कोई आदत है ही नहीं। वह कभी किसी पर थूकता ही नहीं है !'

* * *

'चम्पा बहन, सुनो ! यह तुम्हारा छोटू साफ झूठ बोलता है। इसने अभी-अभी जोर का धक्का दिया और अब यह कहता है कि यह तो खड़ा था।'

'नहीं बहन, मेरा छोटू कभी झूठ नहीं बोलता। वह तो जैसी बात होती है, वैसी ही कह देता है।'

* * *

'रायचन्द भाई ! ज़रा अपने छोटू पर निगाह रखिए। कल वह पड़ोस के कोली-परिवार के लड़के के साथ गालियां बोल रहा था और कीचड़ खूंद रहा था।'

'रघुनाथ भाई ! भला, आप यह क्या कह रहे हैं ? छोटू कोली के कन्हैया के साथ कभी खेलता ही नहीं है। उसको इसकी कोई आदत है ही नहीं। और छोटू गाली तो कभी बोलता ही नहीं है !'

ये माता-पिता अपने छोटू के इतने अधिक पक्षपाती हैं कि ये सोच ही नहीं सकते कि छोटू में भी कोई दोष हो सकते हैं। छोटू के बारे में ये अन्धे बन चुके हैं। लेकिन सच बात यह है कि मैंने अपनी सगी आंखों से छोटू को ऊपर कहे गए सब काम करते देखा है। छोटू के माता-पिता उसको नहीं पहचानते, लेकिन मैं उसको पहचानता हूं। मैं सोच रहा हूं कि मैं छोटू के माता-पिता को छोटू के बारे में कुछ समझा कर कहूं। वे मेरी बात सुनेंगे, तो अच्छा ही है। नहीं तो छोटू जाने और उसके माता-पिता जानें ! इसमें कोई शक नहीं कि इससे छोटू का तो नुकसान ही होगा।

: 62 :

टोका और प्रशंसा

(1)

'बेटे ! तुम अपने बालों में कंघी क्यों नहीं करते हो ? तुम कितने गन्दे लगते हो।'

'सुशीला ! इस समय तुमने यह क्या शुरू किया है ? इसको एक तरफ रख दो। क्या तुम्हारे पास दूसरा कोई काम नहीं है ?'

'ज़रा देखो ! घर में सबके कपड़े फैले पड़े हैं। यह घर है कि धोबी की दुकान है ?'

'बेटे ! इस समय तुम यह क्या गाने लगे हो ? अभी तो दोपहर का समय है। तुमने तो मेरा सिर पका दिया।'

'सुनो, क्या तुम अपने बाल सँवारना जानते हो ?'

'सुनो, आज तुमने यह गन्दा कोट क्यों पहना है ?'

'देखो, तुमने अपने ये हाथ कैसे धोए हैं ? हाथों में यह मिट्टी तो लगी ही है।'

'देखो, खाते समय तुमने कितनी जूठन गिराई है ?'

'देखो, तुमने यह किताब औंधी जमाई है। तुम किताबें जमाना जानते भी हो ?'

'बेटी ! क्या तुम बिन्दी लगाना जानती हो ? देखो, तुमने अपने माथे पर यह बिन्दी कहाँ लगाई है ? क्या बिन्दी इतनी ऊँची लगाते हैं ?'

'तुमने भाड़ू तो लगाई है, लेकिन पैरों में धूल लग रही है।'

'बेटी देखो, तुमने ये सब चावल जला दिए। तुम ध्यान क्यों नहीं रखती हो ?'

(2)

'बिन्दु ! तुम्हारे बाल तो किसी ने बहुत अच्छे काटे हैं। अब इनमें कंघी कर लेने से ये ज्यादा अच्छे लगेंगे।'

'बेटी ! वहाँ वह साग-सब्ज़ी रखी है। पहले तुम उसको सँवार लो। अपना यह काम तुम थोड़ी देर के बाद कर लेना।'

'आओ, हम ये सब कपड़े उठा लें। यहाँ ये धूल में खराब हो रहे हैं। हम इनको ऊपर रख दें।'

'बेटे, इधर आओ। संगीत तो सुबह और शाम की चीज़ है। यह तो पढ़ने-लिखने का समय है। अभी तुम कुछ पढ़ो और लिखो।'

'सिर में तेल तो बढ़िया डाला है !'

'वाह, तुमने अपने कोट में बटन लगवा लिए ? बहुत अच्छा किया।'

'तुमने हाथ तो अच्छे धो लिए हैं। काफी मिट्टी धुल चुकी है।'

'कल तो जूठन आज से भी ज़्यादा गिरी थी। अब तुम कुछ ठीक ढंग से खाना सीखते जा रहे हो !'

'खूब ! यह सजावट तो बढ़िया हुई है ! इस किताब को मैं यहाँ इस तरह रख दूँ ?'

'अब तुम अपने हाथों बिन्दी लगाना सीख गई हो। अब अच्छी बिन्दी लगा करेगी।'

'आज भड़ू अच्छी लगी है। दूसरी बार भाड़ू और दोगी, तो सारी धूल साफ़ हो जाएगी।'

'अच्छा हुआ, चावल चूल्हे पर से जल्दी उतार लिए। नहीं तो सब जल जाते। कल से ज़रा और ध्यान रखना।'

: 63 :

अभी तो यह दूध पीता बालक है

मेरे घर के पड़ोस में एक कोली भाई रहते हैं। वे खुद पढ़े-लिखे हैं, मतलब कि अपनी सही करना जानते हैं। ठेकेदारी करते हैं। छोटे-बड़े सज्जनों के परिचय में आते रहते हैं। उनकी पत्नी घर के सारे काम सँभालती हैं। वे भैंसों की देख-रेख करती हैं। दूध बेचती हैं। बच्चों को पालती-पोसती हैं।

मैंने कोली भाई से कहा : 'भले आदमी, आप अपने बच्चे को बाल-मन्दिर में क्यों नहीं भेजते ? आपका बच्चा कितना बड़ा है ?'

वे बोले : 'भैया, अभी तो छोटा है, सिर्फ साढ़े चार साल का हुआ है।'

मैंने कहा : 'लेकिन हम तो ढाई साल के बच्चों को भरती करते हैं। आपका बच्चा भरती हो सकता है। उसको ज़रूर भेजिए।'

मेरे पास मेरी घर-वाली बैठी थीं। उन्होंने कहा : 'लेकिन इनका बच्चा तो अभी अपनी माँ का दूध पीता है !'

मेरे पड़ोसी भगवान भाई बोले : 'जी हाँ, अभी तो वह अपनी माँ का दूध पी रहा है।'

मुझको आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा : 'क्या सच आपका बच्चा अभी तक अपनी माँ का दूध पी रहा है ?'

भगवान भाई बोले : 'जी हाँ। अभी तो वह अपनी माँ का ही दूध पीता है।'

भगवान भाई चले गए। मैंने अपनी घर वाली से पूछा : 'यह क्या मामला है ? साढ़े चार साल की उमर का बालक अभी तक अपनी माँ का दूध पी रहा है ?'

वे बोलीं : 'हाँ बात सही है। कई बच्चों के बाद यह बच्चा ज़िन्दा रहा है।'

मैंने कहा : 'लेकिन इससे फ़रक़ क्या पड़ता है ?'

वे बोलीं : 'बच्चा माँ की बड़ी उमर में हुआ है।'

मैंने कहा : माना, लेकिन इससे क्या फ़रक़ पड़ता है ?'

वे बोलीं : 'इसीलिए ये लोग अपने इस बच्चे को बहुत लाड़-प्यार के साथ रखते हैं।'

मैंने कहा : 'भला, कहीं ऐसा भी कोई लाड़-प्यार होता है ? यह लाड़-प्यार तो इस बच्चे को पंगु बना देगा।'

वे बोलीं : 'ये लोग तो अनाड़ी हैं। अज्ञानी हैं। बच्चे की माँ अभी तक अपने बच्चे को अपनी कमर पर ही बैठाए रखती हैं। लड़का बड़ी मुश्किल से लड़खड़ाता हुआ थोड़ा चल लेता है।'

मैंने कहा : 'क्यों न हम इनसे बात करें और इनको समझाएँ ?'

वे बोलीं : 'भला, ये अनाड़ी लोग ऐसे कैसे समझ सकेंगे ?'

हमारी बातचीत तो यहीं रुक गई। लेकिन भला मैं कैसे रुकता ? घर वाली से निराशा-भरा उत्तर मिला था, किन्तु मैं निराश कैसे होता ? किसी ज़माने में तो हम इन लोगों से भी ज्यादा अज्ञानी और अनाड़ी रहे हैं। भले लोगों ने हमारा अज्ञान दूर किया, और हमको सुख का रास्ता दिखाया। हमको भी अपनी शक्ति-भर अपने इन भाइयों के अज्ञान को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

: 64 :

अलगनी

मैं एक घर में पहुंचा। बच्चों को कपड़े पहनने थे। उनको कपड़े पहनने की जल्दी थी, लेकिन उनके कपड़े तो अलगनी पर टँगे थे। माँ या दीदी में से कोई आएँ और कपड़े उतार कर दें, तो बच्चों को उनके कपड़े मिल सकें। बालक बाट देखते हुए अलगनी की तरफ टक लगाए खड़े थे। घर का कोई बड़ा आदमी आया। उसने कपड़े उतार दिए। बच्चे तभी अपने कपड़े पहन सके। मैं कपड़े उतारकर दे सकता था, लेकिन मैं यह देख रहा था कि इस घर में यह क्या चल रहा है ?

मैंने सोचा : 'ऐसा क्यों है ? क्या एक अलगनी नीची और एक ऊंची नहीं रखी जा सकती ? यदि ऐसी व्यवस्था की जा सके, तो बच्चे अपने कपड़े खुद ही उतार सकें और पहन भी सकें। पहने हुए कपड़े उतार कर फिर अलगनी पर भी रख सकें।'

मेरे मन में विचार आया कि मैं इन बच्चों के माँ-बाप से बात करूँ। मैंने बात की और मेरी बात उनके गले उतर गई। एक अलगनी नीचे लगाई गई और बच्चे अपने कपड़े उस पर टाँगने लगे।

दूसरी बार जब मैं उस घर में पहुंचा, तो मैंने देखा कि बच्चे अपने कपड़े खुद ही उतार रहे हैं और पहन रहे हैं। अब उनको किसी की बाट नहीं देखनी पड़ती। उनकी पराधीनता दूर हो चुकी थी। वे अपने हिसाब से पूरी तरह स्वतन्त्र हो चुके थे। उनको इस हद तक अपना राज मिल चुका था।

मैंने बच्चों के माँ-बाप का ध्यान बच्चों की स्वाधीनता की तरफ खींचा। माँ-बाप ने अपने घर में मेरे विचारों को अमल में लाना शुरू कर दिया, और अपने बालकों के लिए कई छोटी-छोटी सुविधाएँ खड़ी कर दीं।

कुछ दिनों के बाद मैंने देखा कि उस घर में बालकों के लिए एक छोटी-सी मटकी नीचे फ़र्श पर रखी हुई है। बालक उसमें से अपने हाथों पानी लेकर पी रहे थे। अब उनको पानी किसी से माँगना नहीं पड़ता था। भोजन के समय वे छोटी घोड़ी पर रखे गए अपने बरतन खुद ही ले आते थे। आलमारी के नीचे वाले खाने में वे अपनी सब चीजें जमा कर रखने लगे थे। पहले जिन कामों के लिए उनको घर के बड़ों की मदद माँगनी पड़ती थी, उन कामों को अब वे खुद ही कर लिया करते थे।

मैंने सोचा : 'अपना यह अनुभव मुझको सब माँ-बापों तक पहुंचा देना चाहिए।'

: 65 :

झगड़ा

ऊँ...ऊँ...ऊँ... करता हुआ रतन घर में आया। बाघिन की-सी छलांग वाली चाल के साथ जमुना बहन उठ खड़ी हुई और बोलीं : 'बोलो, तुमको किसने मारा है ? कौन है, वह कम्बख्त ?'

रतन ने कहा : 'नारायण ने मुझको धक्का दिया।'

जमुना बहन बोलीं : हाँ, हाँ, मैं उस नारायण को पहचानती हूँ। मैं उसकी मां को भी पहचानती हूँ। नारायण ने तो सारी गली को सिर पर उठा लिया है। चलो, हम उनको दो ऊँची-नीची बातें कह आएँ।'

जमुना बहन लाल-पीली होती हुई झमकू बहन के घर पहुंचीं।

बोलीं : 'झमकू बहन, तुम सुन रही हो? तुम कहां हो? तुम अपने इस नारायण को संभालो। नहीं तो......।'

झमकू बहन ने कहा : 'जमुना बहन! तुम अपने घर लौट जाओ। नारायण, मेरा यह भोला-भाला नारायण, जो किसी को कभी हटने तक के लिए भी नहीं कहता, उसने तुम्हारे रतन को मारा है? जाओ, बहुत अकड़ मत दिखाओ। चुपचाप अपने घर चली जाओ।'

जमुना बहन के गुस्से की कोई सीमा नहीं रही। लम्बे हाथ कर-करके वे बुरी तरह उलझीं। झमकू बहन भी उसी तरह उलझती और गरजती रहीं।

इनका झगड़ा देखने के लिए गली-मुहल्ले के सब लोग इकट्ठा हो गए। इनकी यह फज़ीहत देख-सुनकर सब हँसी उड़ाते हुए वापस अपने-अपने घरों में चले गए। थक-थकाकर जमुना बहन और झमकू बहन भी अपने घरों में लौट गईं।

सुबह के मेरे दो घण्टे नाहक़ बरबाद हो गए। बेकार का खून उबला और नतीजा कुछ भी नहीं निकला। सब जहाँ के तहाँ रह गए।

बात यह है कि झमकू और जमुना ये दोनों ऐसी हैं कि एक-दूसरे का सिर फोड़ने के लिए हमेशा अपनी कमर कसी की कसी रखती हैं। स्वभाव से ही दोनों झगड़ालू हैं। तिस पर ये दोनों बेटों की माँ बन गई हैं। इनके बेटों में भला, क्या राम होता? दोनों ने दोनों को सिर पर चढ़ा रखा था। दोनों मानती थीं कि उनका लड़का तो सीधा, सच्चा, समझदार और भोला-भाला है। लेकिन बेटे ऐसे कि सारी दुनिया का सामना करके घर लौटेंगे। गली-मुहल्ले के लड़के तो उनसे दूर ही रहा करते थे। टोले मुहल्ले की बहनें तो

झमकू और जमना को नौ हाथ दूर से ही नमस्कार किया करती थीं। दूसरा कोई उनकी बराबरी करता भी कैसे? झमकू ही थी कि वह जमुना से निपट लिया करती थी और जमुना थी कि वह झमकू से निपट लेती थी।

बेटों की मां बनी ऐसी झगड़ालू बहुएँ हर एक गली और मुहल्ले-टोले में होती हैं। हम इनसे दूर ही रहें। इनके बच्चों से हम अपने बच्चों को भी दूर ही रखें।

: 66 :

परावलम्बन

पिताजी! ये बटन लगा दीजिए।

अम्माजी! मुझ से यह नहीं उठता।

दीदी! मुझको ये बूट पहना दीजिए।

अम्माजी! मुझको नहला दीजिए।

छोटे चाचाजी! यह सांकल लगा दीजिए।

पिताजी! मुझको मेरी पुस्तक नहीं मिल रही है। जरा आप खोज दीजिए।

अम्माजी! ज़रा रुक जाइए, और मेरे साथ चलिए।

भैयाजी! इस रूमाल की गेंद बना दीजिए।

: 67 :

स्वावलम्बन

बेटे, बटन तो तुम अपने ही हाथों लगा लो।

ज़रा उठाकर देखो! जरूर उठेगा।

तुम तो अपने बूट पहन लेते हो। तुम खुद ही पहन लो।

अब तो तुम खुद नहा सकते हो। मैं तुम्हारे लिए पानी निकाल देती हूँ। तुम खुद ही नहा लो।

थोड़ी कोशिश करो और सांकल तुम खुद ही लगा दो। देखें, कैसे लगाओगे?

देखो, पुस्तक सब खिड़कियों में देख लो। अपनी पुस्तक तुम खुद ही खोज निकालो।

तुम अपनी चाल से चलकर धीमे-धीमे आओ। अकेले-अकेले भी चला जा सकता है।

गेंद तुम खुद ही बना लो। मैंने तुमको गेंद बनाना सिखा तो दिया ही है।

: 68 :

ग़लत मदद

क्या बात है? दरवाज़ा नहीं खुल रहा? लो, मैं खोल देती हूँ। क्या बात है? नाड़ा नहीं बंध रहा? लाओ, मैं बांध दूं। क्या बात है? टोपी नहीं उतार पाते? तुम जरा रुको, मैं उतार देता हूँ।

क्या बात है? कील नहीं ठुकती? हथौड़ी ले आओ, मैं ठोक दूंगा।

क्या बात है? पाजामा नहीं पहन पाते? आओ, मैं पहना दूं।

: 69 :

सही मदद

क्या बात है? दरवाजा नहीं खुल रहा? देखो, इस तरह खींचो। खुल जाएगा।

क्या बात है? नाड़ा नहीं बँध रहा? देखो, इस तरह बांध कर देखो, बँध जाएगा।

क्या बात है? टोपी नहीं उतार पाते? देखो, उस लकड़ी से या सलाख से उतार लो।

क्या बात है? कील नहीं ठुकती? देखो, हथौड़ी ऐसे पकड़ो और कील पर चोट करो।

क्या बात है? पाजामा नहीं पहन पाते? देखो, इस तरह बैठकर यों पैर डालो।

: 70 :

बालकों की आपसी बातें

चन्दन ने कहा : 'मेरे पिताजी जो कहते हैं, सो तो जरूर ही करते हैं। परसों उन्होंने कहा था : 'कहानी आज नहीं, कल पढ़ूंगा।' कल उन्होंने खुद ही कहा : 'आओ, आज कहानी पढ़नी है न ?'

रमेश ने कहा : 'मेरे पिताजी हर बार कहते रहते हैं, कल गुड़िया ला दूंगा, कल गुड़िया ला दूंगा। लेकिन कभी, किसी दिन लाते ही नहीं हैं। बस, गप हाँकते रहते हैं।'

विमल ने कहा : 'मेरी मां की आदत भी ऐसी ही है। कहती हैं, कल गोली मंगवा दूंगी, लेकिन कभी मँगवाती ही नहीं हैं। कभी कहती हैं, आज पैसे नहीं हैं। कभी कहती हैं, आज तो मैं भूल ही गई। या फिर कहती हैं कि आज नहीं मँगानी है। खाने के लिए आज दूसरी चीजें हैं।'

विश्वनाथ ने कहा : 'वैसे तो मेरी मां अच्छी हैं। लेकिन कभी-कभी जैसा कहती हैं, वैसा करती नहीं हैं। ऐसी स्थिति में वे कहती हैं कि बात कुछ ऐसी बनी कि काम हो ही नहीं सका। वैसे, अपने दिए हुए वचन का पालन तो वे जरूर ही करती हैं।

चन्दन ने कहा : 'मेरे पिताजी ने कह रखा है कि वे जो कहेंगे, सो करेंगे ज़रूर, लेकिन हो सकता है कि कभी किसी कारणवश न भी कर पाएँ। कोई काम ही ऐसा आ जाए, कि कहा हुआ काम न भी हो पाए।'

रमेश ने कहा : 'यह तो ठीक ही है। लेकिन जब कोई रोज़-रोज़ झूठे बहाने बनाता रहता है, तो मन को अच्छा नहीं लगता। या तो 'हां' कहें, या 'ना' कह दें। बात साफ़ हो जाए। फिर बार-बार उसकी याद ही न आए।'

विमल ने कहा : 'ऐसा करना तो अच्छा ही है। तब तो रोज़-रोज बाट देखने की कोई जरूरत रहती नहीं। सारे दिन हम सोचें और मानें कि 'आहा, आज यह काम होगा! पर आखिर में जब वे इनकार कर देते हैं, तो मन बहुत सुस्त हो जाता है। मुझको यह सब अच्छा नहीं लगता!'

: 71 :

पढ़ाई सम्बन्धी विचार

(1)

रात ब्यालू के बाद का समय था। पिताजी ने पुकार कर कहा : 'आओ सब आ जाओ। अपना-अपना सबक़ तैयार करने बैठ जाओ।'

रुक्मिणी, चम्पा, नटवर, नवल, सब सबक़ याद करने के लिए इकट्ठा हो गए।

राधा को आने में देर लगी। पिताजी ने डपटते हुए कहा : 'राधा ! हमेशा की तरह आज भी तुमको देर हो गई है। तुम इतनी धीमी चाल से क्यों आ रही हो ? इस तरह तो तुम अपना सबक़ कभी समय पर तैयार कर ही नहीं सकोगी।'

सबने अपनी-अपनी पुस्तकें निकाल लीं, और सब अपने-अपने पाठ रटने बैठ गए।

सारा कमरा शोर से भर गया। पिताजी ने कहा : 'सुनो, नटवर ! तुम इधर-उधर देखकर खेलते क्यों हो ? तुम इस दीवार के सामने मुंह करके बैठो। इससे तुम्हारा ध्यान और कहीं जाएगा नहीं।'

चम्पा ने लालटेन की बत्ती धीमी कर दी। नटवर ने कहा : 'पिताजी, देखिए, यह चम्पा ऊधम मचा रही है।'

पिताजी ने चम्पा को डांटा और कहा : 'चम्पा, सुनो ! तुम दूर बैठो। उस पेटी के पास जाकर बैठ जाओ। यह दूसरा लालटेन तुम अपने पास रख लो। तुम अपने हाथ अपने क़ाबू में रखा करो।'

नटवर को नींद आने लगी। उसकी आंखें लाल हो उठीं। पिताजी ने कहा : 'नटवर, क्या तुमको अभी से नींद आने लगी है ? तुमने इतना अधिक खाना क्यों खा लिया ? उठो, अपनी आंखों पर थोड़ा पानी छिड़क लो, नींद अभी भाग जाएगी।'

नवल पिताजी को अपना सबक़ दिखाने पहुंचा। उन्होंने उसको अपने पास रख लिया और कहा : 'देखो, यह नवल कितना होशियार है ! आज

सबसे पहले इसको छुट्टी मिली है। राधा, तुम जल्दी करो। दूसरा नम्बर तुम ले लो।'

राधा दौड़ती-दौड़ती अपना पाठ दिखाने पहुंचीं। पर उसमें ग़लती रह गई। पिताजी ने डांटते हुए कहा : 'राधा तुम यह कैसा अधकचरा काम करके लाई हो ? अच्छी तरह रट कर पूरी तैयारी कर लो।'

रुक्मिणी ने कहा : 'पिताजी, थोड़ा बचा हुआ काम में कल पूरा कर लूंगी।'

पिताजी बोले : 'भला, कल कैसे पूरा कर पाओगी ? अगर तुम आज याद नहीं कर सकोगी, तो तुमको आज नम्बर भी नहीं मिलेगा। तुम्हारा नाम तो नीचे आना ही नहीं चाहिए।'

(2)

सब ब्यालू से निपटे। पिताजी ने पुकारकर कहा : 'सुनो, राधा, कुसुम, जगदीश, रेवाशंकर, सब यहां आ जाओ। सब मेरे साथ अन्त्याक्षरी खेलने आओ।'

राधा और कुसुम एक तरफ जगदीश और रेवाशंकर दूसरी तरफ।

पिताजी औदर बने। अन्त्याक्षरी ख़ूब जमी। देर तक चली।

फिर कुसुम बोलीं : 'पिताजी ! कल वाली कहानी अभी अधूरी रही है। उसको आज पूरा करना ही है। आज नहीं कहेंगे, तो हमारा मन खट्टा हो जाएगा।'

फिर पिताजी ने कहानी सुनानी शुरू की। रेवाशंकर की आंखें झपक रही थीं, पर वह तो तनकर बैठ गया। जगदीश ध्यान लगाकर सुनने लगा। वह न हिलता था, न डुलता था। कान लगाकर बराबर सुन रहा था। वैसे राधा और कुसुम को आपस में बात करना अच्छा लगता है, पर कहानी के समय में तो वे चुपचाप बैठ कर सुनती ही रहीं।

अधूरी कहानी जब पूरी हो गई, तो राधा ने कहा : 'पिताजी, कई दिनों से आप पहेलियाँ नहीं बुझवा रहे हैं।'

पिताजी बोले : 'अब तुम सब सो जाओ। कल फिर अपने पाठ तुम कब याद करोगे ?'

सब एक साथ बोल उठे : 'पाठ ? पाठ तो हमने आधे-अधूरे तैयार कर ही लिए हैं। बचे हुए पाठ हम सुबह जल्दी उठकर तैयार कर लेंगे। आज आप पहेलियाँ जरूर बुझवाइए। आगे की बात आगे। पाठ तो हम चटपट तैयार कर ही लेंगे ?'

पिताजी ने कहा : 'लेकिन देखो, इस रेवाशंकर को तो नींद आ रही है।'

रेवाशंकर बोला : 'पिताजी, अगर आप पहेलियाँ शुरू कर देंगे, तो मैं रात के बारह बजे तक जाग लूँगा।'

पिताजी पहेलियाँ बुझाने लगे और बच्चे उनके जवाब देने लगे। रात के ग्यारह बजे। माँ ने ऊँची आवाज में कहा : 'भई, अब तो तुम सब सो जाओ। तुम लोग अपने पाठ तो याद करते नहीं हो और इस पहेली के फेर में पड़ गए हो। कल फिर विद्यालय में क्या करोगे ?'

पिताजी ने कहा : 'सच्ची पढ़ाई तो यही है। पाठ तो इनको रोज़ ही पढ़ने होते हैं। पाठों के मामले में ये आलस्य करते ही कहाँ हैं ?'

जहाँ बैठकर सब बालक अपने सबक़ तैयार करने में लगे थे, मां वहीं उनके पास पहुँच गईं और बोलीं : 'अब आप इन सबको छुट्टी दे दीजिए। ये सब थके होंगे।'

पिताजी ने कहा : 'भई, पढ़ाई का काम कोई आसान काम तो है नहीं। कभी हमने भी इसी तरह अपनी पढ़ाई पूरी की थी।'

: 72 :

पिताजी और माताजी को फ़ुरसत है

(1)

'अम्माजी ! आप आएँगी न ? हमने घास-फूस के कुछ झोंपड़े बनाए हैं। आप देखने आइए।'

'हाँ-हाँ, लेकिन तुम इन माँजे हुए लोटों को टाँड पर रख दो, जिससे मैं जल्दी आ सकूँ।'

'अम्माजी ! चलिए, चलिए। मैं आपको रंजन का एक खेल दिखाऊँ। वहाँ वह जाली से लटक कर हँस रहा है।'

'चलो, चलो, झाड़ू मैं उधर से लौट कर लगा लूँगी।'

'अम्माजी ! क्या आज शाम को आप हमारे साथ घूमने चलेंगी ?'

'हाँ, चलूँगी। लेकिन पहले तुम यह सारा सामान सँभाल कर रख दो। बाद में कमरे में झाड़ू लगाकर मैं भी तैयार हो जाऊँगी।'

'अम्माजी ! आज हम रास खेलेंगे। आप जरूर आइए।'

'यह जूठन समेटने में तुम मदद करोगे, तो मेरा काम जल्दी निपट जाएगा, और मैं आ सकूँगी।'

(2)

'पिताजी ! आइए, मैं आपको अपना खोदा हुआ गड्ढा दिखाऊँ।'

'तुम आगे चलो। इस किताब के ये कुछ पन्ने पढ़कर मैं भी आ रहा हूँ।' पिताजी पढ़कर देखने पहुँचे।

'पिताजी ! आज हमने नई रंगोली रची है। आइए, आप देख लीजिए।'

'कुछ देर रुको। ये दो पत्र लिखने रह गए हैं। इनको लिखकर आता हूँ।' पत्र लिखकर पिताजी रंगोली देखने पहुँचे।

'पिताजी ! आइए, आइए। आज दीदी कुछ देखने लायक चीज़ें लाई हैं। आप जरूर आइए।'

'बस, आ ही रहा हूँ। थोड़ी देर में अपना यह हिसाब टीपकर आता हूँ।'

पिताजी ने हिसाब टीप लिया और वे देखने पहुँचे। दीदी एक छोटा-सा काँटा चूहा लाई थीं।

'पिताजी ! आप आ सकेंगे ? बड़े भैया ने आज हमारे भाषण रखे हैं, और आपको सभापति बनना है।'

'अच्छा ! बस, मैं यह आया। दो मिनट में आता हूँ। सभापति तो दो मिनट देर से आ सकते हैं न ? यह एक तार लिखकर आ ही रहा हूँ।'

: 73 :

माताजी और पिताजी को फुरसत नहीं है

(1)

'अम्माजी ! ज़रा इधर देखिए। मैंने मोतियों की यह कितनी बढ़िया माला बनाई है !'

'बेटी, मुझको फुरसत नहीं है। तुम दूर हट जाओ ! मुझको बरतन माँजने हैं।'

'अम्माजी ! ज़रा इधर तो आइए। देखिए, पपीते के इस पेड़ पर कितने पपीते लगे हैं। ज़रा देखिए। एक पपीता तो बहुत ही बड़ा है।'

'बेटे, मुझको फुरसत नहीं है। तुम अपने देखो। मुझको तो अभी चौके की सफाई करनी है।'

'अम्माजी ! आप हमारा खेल देखने आएँगी ? आज हम एक नया खेल खेलने वाले हैं।'

'बेटे, मुझको तो जरा भी फुरसत नहीं है। ढेर सारे कपड़े धोने हैं।'

'अम्माजी ! अजी, अम्माजी ! ज़रा इधर आइए। मैया ने सुन्दर बँगला बनाया है। देखने लायक है।'

'बेटे, मुझको फुरसत नहीं है। अभी ढेर सारे कपड़े सुखाने हैं।'

'अम्माजी ! अम्माजी ! आइए, ज़रा देखिए, यह मुन्नी कैसी खिल-खिलाकर हँस रही है !'

'बेटे, मुझको तो थोड़ी भी फुरसत नहीं है। घर को झाड़ने-बुहारने का काम सामने खड़ा है।'

(2)

'पिताजी ! देखिए, इस किताब की ज़िल्द कितनी बढ़िया है ?'

'तुम अभी जाओ। मुझको फुरसत नहीं है।' पिताजी लेटे-लेटे किताब पढ़ रहे हैं।

'पिताजी ! देखिए, मैंने इस सिक्के को राख से माँजकर कितना चमकदार बना दिया है !'

'बेटे, तुम अभी जाओ। मैं काम कर रहा हूँ।' पिताजी पत्र लिख रहे थे।

'पिताजी ! देखिए, आज हमारे गेंदे पर पहला फूल खिला है !'

'अभी नहीं। मैं काम में लगा हूँ।' पिताजी क़ानून की किताब में से टीपें तैयार कर रहे थे।

'पिताजी ! आइए, देखिए, आज हमने इस बिल्ली को ज़ंजीर से बाँधा है।'

'बेटे, अभी मुझको फुरसत नहीं है। तुम अपनी बिल्ली के साथ खेलते रहो।' पिताजी अपने मुवक्किलों के साथ बैठे-बैठे बातें कर रहे थे।

'पिताजी ! ज़रा इधर तो आइए ! देखिए, आज इस नए टाँड पर हमने अपना सारा सामान जमा कर रखा है।'

'बेटे, अभी नहीं। फिर कभी फुरसत से देखूँगा।' पिताजी अपने मित्रों के साथ बैठकर आराम से चाय पी रहे थे।

'पिताजी ! ज़रा रुकिए। मैं अपनी नई पुस्तक आपको दिखा दूँ। उसकी हरी जिल्द बहुत बढ़िया है।'

'बेटे, मुझको तुरन्त ही जाना है। अभी बिलकुल फुरसत नहीं है।' छड़ी हाथ में लेकर पिताजी अपने संगी-साथियों के साथ घूमने जा रहे थे।

: 74 :

पिताजी

(1)

'पिताजी ! आप कल घूमने चलेंगे न ?'

'हाँ, हाँ। कल ज़रूर चलेंगे।'

'पिताजी ! अब आप घूमने चलिए। कल आपने कहा था।'

'नहीं बेटे, आज तो थोड़ा काम है। अब कल देखेंगे।'

* * *

'पिताजी ! आप कल कहानी कहेंगे न ?'

'हाँ, भई, कल तो ज़रूर ही कहनी है।'

'पिताजी ! आइए, कल की अधूरी कहानी आज पूरी सुना दीजिए ।'

'नहीं बेटे, आज तो मेरा मन अलसा रहा है । अब कल देखेंगे ।'

* * *

'पिताजी ! बड़े भैया वाली वह साइकल हम कब दुरुस्त करेंगे ?'

'बेटे, कल फुरसत निकालकर हम यह काम कर लेंगे ।'

'पिताजी ! आइए, साइकल बाहर निकाल ली है । हम सब तैयार हैं ।'

'बेटे, आज इसको छोड़ दो । आज तो मैं थोड़ा आराम करना चाहता हूँ । अब कल देखेंगे ।'

(2)

'बच्चो, सुनो ! कल शान्ति भाई के घर होते हुए हम सर्कस देखने जाएँगे ।'

'पिताजी ! अब हम सर्कस देखने कब चलेंगे ? चलिए न समय तो हो चुका है ।'

'लेकिन आज तो जीवराम भाई अपने घर आने वाले हैं । मैंने उनको चाय के लिए बुलाया है । अब अगले रविवार को चलेंगे ।'

* * *

'बच्चो ! कल हमको फुटबॉल खेलने चलना है । तुम चार बजे तैयार रहना ।

'चार बजे ? बहुत अच्छा । हम तैयार रहेंगे ।'

'श्यामजी भाई, आज चार बजे आप मेरे घर चाय पीने पधारेंगे ? दो मेहमान आए हैं ।'

'माफ कीजिए, मैं आज नहीं आ सकूँगा । मैंने आज अपने बच्चों को उनके साथ खेलने जाने का वचन दिया है ।'

* * *

'जीवन लाल, रम्भा, रसिक, तुम सब कहाँ हो ? झट-पट आ जाओ । जैसा कि मैंने कल कहा था, आज कहानी पूरी कर देनी है । जल्दी आओ । बाद में मैं चिट्ठियाँ लिखने बैठूँगा ।'

* * *

'पिताजी ! अपना यह कमरा हमको कब साफ़ करना है ? कल या परसों ?'

'कल तो समय नहीं है । परसों देखेंगे ।'

'पिताजी ! आप कहाँ हैं ? आइए, कमरे में आ जाइए । हम कमरे की सफाई शुरू करें ।'

'बच्चो, मैं तो बहुत पहले आ गया हूँ ।'

* * *

'पिताजी ! आज आप हमको बाजा दिलाने के लिए अपने साथ गाँव में ले जाने वाले थे न ? पिछले रविवार को आपने कहा तो था ।'

'हाँ, मैं भी यही सोच रहा था । तुम सब जल्दी तैयार हो जाओ । हम को चलना तो है ही ।'

: 75 :

अगर थोड़ा सोचा होता···

किसी ने मुझको कहा कि बाबू ने चिमनी फोड़ दी है । सुनते ही मेरा पिता खौल उठा । मैं हक्का-बक्का-सा उठा और मैंने बाबू को दो तमाचे जड़ दिए ।

बाबू सहम गया । पहले तो वह कुछ बोल ही नहीं सका । बाद में वह फूट-फूट कर रोने लगा ।

मुझको पता चला कि चिमनी तो कल बाबू की माँ के हाथ से फूटी थी, जब वे उसको साफ कर रही थीं ।

मैं बहुत पछताया । मैंने बाबू को अपने पास बुलाया और मैं चुपचाप उसको सहलाता रहा । बाबू सिसकियाँ ले-ले कर रो रहा था । वह मेरे पास से दूर चला गया, और ज़ोर-ज़ोर से रोता रहा ।

* * *

चन्दा झूले पर से गिरी और चीख कर रोने लगी । अन्दर से उसकी माँ ने चिल्ला कर कहा : 'क्यों रमेश, तुमने उसको फिर गिरा दिया ?'

सुनते ही जो किताब मैं पढ़ रहा था, उसको मैंने रमेश के ऊपर फेंका । रमेश के सिर में ज़ोर की चोट लगी । वह रोता-रोता वहीं बैठ गया ।

थोड़ी देर के बाद चन्दा ने कहा : 'पिताजी ! रमेश भैया ने मुझको नहीं गिराया था। मैं खुद ही फिसलकर गिर पड़ी थी। आपने रमेश भैया को क्यों मारा ?'

मुझको बहुत बुरा लगा। मैंने रमेश को अपने पास बुलाया, लेकिन वह मेरे पास आया ही नहीं। वह बड़ी देर तक रोता रहा। उसने मेरे सामने देखा तक नहीं।'

* * *

घर में जीवन और जानकी दोनों इधर-उधर दौड़-भाग रहे थे। मैं अपनी पढ़ाई वाले कमरे में बैठा था। मैंने उनकी माँ को कहते सुना : 'भला, ऐसा यह नुक़सान कैसे सहा जाए ?'

सुनकर मैं बाहर आया, तो देखा कि चौके में दूध फैला हुआ था, और बच्चों की माँ उसको समेटने में लगी थीं। सहसा मुझको ताव आ गया। मैंने ज़ोर से चिल्लाकर बच्चों को पुकारा : 'इधर आओ ! इतना ऊधम क्यों मचाए हुए हो ?' शायद बच्चे कुछ समझ नहीं पाए, और वे घर के आँगन में इधर-उधर दौड़ते रहे। मैं उनके पास पहुँचा, और मैंने दोनों को एक-एक तमाचा जड़ दिया ! फिर मैं अपने कमरे की तरफ लौटा।

दूध समेटते-समेटते बच्चों की माँ ने कहा : 'आपने बच्चों को नाहक़ ही मारा। दूध तो बिल्ली ने फैलाया था। बच्चे बेचारे तो उसको भगाने के लिए उसके पीछे दौड़े थे।'

मैं बुरी तरह खिसिया गया। मैं बच्चों को अपना मुँह कैसे दिखाता ?

बच्चे रात तक मेरे पास आए ही नहीं।

मैं भी उनके पास जा नहीं पाया।

* * *

नलिनी और नन्दन दोनों अपने कमरे में खेल रहे थे। मैं पास के कमरे में लिख रहा था। अचानक नलिनी ज़ोर से चिल्ला उठी। मैं चौंका और उधर दौड़ा। बिना पूछताछ के ही मैंने नन्दन का कान खींचा और एक तमाचा जड़ दिया। मैंने कहा : 'तुम इस नन्हीं बच्ची को क्यों रुलाते हो ? तुम

समझते क्यों नहीं हो ?' इतने में नलिनी हँसी और बोली : 'काकाजी, हम तो मज़ाक कर रहे थे। मुझको किसी ने रुलाया नहीं।'

'काटो तो खून नहीं'—जैसी मेरी हालत हो गई ! नन्दन अपनी रोती और गुस्से भरी आँखों से मेरी ओर देखता रहा। मैंने मन-ही-मन अपने को धिक्कारा। उस दिन से नन्दन मेरे कमरे के आसपास कहीं खेलता नहीं है।

* * *

घर के अन्दर से आकर चम्पक की माँ ने मुझसे कहा : 'आप इसको कुछ कहेंगे या नहीं ? यह मेरा कहा कोई काम करता ही नहीं है। कहने पर उलट कर जवाब देता है। मुझको तो यह कुछ समझता ही नहीं।'

मैं आपे से बाहर हो गया और मैंने चम्पक को पीट दिया। मैं बोला : 'चम्पक ! तुम समझते क्या हो ?'

चम्पक कुछ बोला नहीं। उसकी आँखों में आँसू छलछला आए। वह बाहर चला गया। चम्पक बड़ा था और समझदार भी था।

दूसरे दिन चम्पक मेरे पास आया और उसने स्पष्ट करते हुए कहा कि उसकी माँ की बात बिलकुल अतिशयोक्तिपूर्ण थी। वह अपनी माँ का कहा काम करता ही था, लेकिन माँ उस समय बहुत अधीर बन गई थीं।

मैंने सोचा कि मैं चम्पक से माफी माँग लूं, मैं माफी माँग नहीं सका। मेरा मन बहुत व्यथित हो उठा।

* * *

जमुना, रमा और वसुधा तीनों हौज़ में उतरकर नहा रही थीं। नहाते-नहाते उनको कोई आधा घण्टा हुआ होगा। जब मैं गाँव से लौटा, तो उनकी माँ ने मुझसे कहा : 'ये इस हौज़ में दो घण्टों से नहा रही हैं। मैं इनको बाहर निकलने के लिए कहती हूँ, पर ये निकलती ही नहीं हैं।'

मैंने कहा : 'सुनो, तुम सब तुरन्त बाहर निकलो ! जल्दी करो।'

बच्चियाँ नहाने का आनन्द लूट रही थीं। वे नहाती रहीं। मुझको गुस्सा आ गया। मेरा सिर तप गया। मैंने उनको खींच-खींचकर बाहर निकाला और धक्के मारकर भगा दिया।

जो बच्चियाँ अभी हँस रही थीं, वे रोने लगीं।

किसी ने कहा : मैया,बेचारी ये बच्चियाँ तो अभी-अभी हौज में उतरी थीं। गरमियों के दिन हैं। इनकी माँ को तो इस तरह बात बढ़ाकर कहने की आदत ही है।'

मेरा मुँह उतर गया। मुझको लगा कि सचमुच गलती हो गई। मैंने बच्चियों से कहा : 'तुम कल खूब नहा लेना।'

बच्चियाँ बोलीं : 'हमको नहाना ही नहीं है।'

मैंने सोचा : 'आज मुझ पर वाणी का यह अच्छा प्रहार हुआ।'

* * *

ऑफिस से आकर मैंने देखा कि विनायक ने मेरी लाल स्याही सब खर्च कर डाली है। उससे उसने दीवार पर लकीरें खींची थीं। काली स्याही से मुँह पर तिलक लगाया था। कपड़े गन्दे किए थे। हाथ गन्दे कर लिए थे। यह दृश्य देखकर मैं अपने आपे में नहीं रह पाया। मैंने गरज कर कहा : 'विनायक! हरामखोर, इधर आओ। तुमने यह सब क्या कर डाला? दीवार गन्दी कर दी। मुंह रंग लिया!'

विनायक भागने लगा। मैं अपने बूट के साथ घर में घुसा। मैंने लपक कर विनायक को पकड़ लिया और उसको तीन-चार बार बेंत से पीटा। विनायक बहुत रोया। उस रात उसने ब्यालू भी नहीं किया। बिना कुछ खाए ही सो गया। रात में वह रोने लगा और रोते-रोते बोला : 'पिताजी! मुझको पीटिए मत! पिताजी! मुझको पीटिएमत!'

मैं बैठा-बैठा अखबार पढ़ रहा था। मेरे दिल में गहरी टीस पैदा हुई। मैंने इसको क्यों पीटा? इसका यह रोना कितना करुणाजनक है। मैंने विनायक की पीठ पर हाथ फेरा। उसको पानी पिलाने के लिए मैं प्याला उसके मुंह के पास ले गया। उसने आँखें खोलीं, मुझको देखा और मुंह फेर लिया। जब उसकी माँ ने पानी दिया, तो उसने पी लिया।

मुझको लगा कि सचमुच ही मैं राक्षस बन गया था। विनायक ने तो थोड़ी स्याही ही बिगाड़ी थी, लेकिन मैंने उसको कितनी बड़ी चोट पहुँचाई?

* * *

मैं चित्रों की एक सुन्दर पुस्तक देख रहा था। नन्हा रसिक हँसता-हँसता आया, और मेरे हाथ से पुस्तक खींचता हुआ बोला : 'आपको अम्माजी बुला रही हैं। चलिए, तुरन्त ही चलिए।'

पुस्तक खिंची और चित्र फटा। मैं ताव में आ गया। मैंने कहा : 'जाओ, मैं नहीं आता! तुम इतने जंगली क्यों हो?'

रसिक रोता-रोता भाग गया। अपनी माँ के पास पहुँचकर वह ज़ोर से रो उठा और रोते-रोते ही माँ की गोद में सो गया।

रसिक की माँ ने भी मुझको नहीं बुलाया। उन्होंने मेरी धमकी-भरी आवाज़ सुन ली होगी।

देर रात मैं रसोईघर में पहुँचा। रसिक सो रहा था। उसकी माँ का मुँह उदास था। रसिक के गालों पर सूखे हुए आँसुओं के रेले चमक रहे थे।

मैं शरमिन्दा हुआ। मैंने सोचा : 'चित्र जो फटा, सो तो फटा ही था। किन्तु रसिक के इन गालों का एक चित्र बनाकर कोई इन पर कहानी लिखे, तो भला वह कैसी होगी?'

: 76 :

यह लड़का किसका है?

(1)

यह लड़का किसका है?

यों तो यह दुबला-पतला दीखता है। आँखें मरखन्नी हैं। पैरों की पिंडलियाँ गठीली हैं। सौंपा हुआ चटपट कर देता है। पिताजी जो चीज़ मँगवाते हैं, सो ला देता है। 'बेटे, मेरा ओव्हरकोट ले आओ।' और वह ओव्हरकोट घसीट कर ले आता है। 'बेटे, इस कुत्ते को भगा दो।' उसने कुत्ते को एक पत्थर मारा और कुत्ता भौं-भौं भौंकता हुआ भाग गया। 'बेटे, जाओ, दुकान से दो पैसे के पान ले आओ।' लड़का दौड़ कर गया और दो पैसे के पान ले आया।

पिताजी बाहर गए। लड़का घोड़ी के पास खड़ा हो गया, और उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगा। 'माँ, माँ!' कहकर वह उसको पुचकारने लगा।

लड़के की माँ ने उसको पुकारा और कहा : 'बेटे, जाओ, सामने वाले घर से छाछ ले आओ।' लड़का दौड़ा-दौड़ा गया और छाछ ले आया।

लड़के को थोड़ी फुरसत मिली। उसने सूत की गेंद सँभाली और बल्ला हाथ में लिया। अकेला ही आँगन में एक घण्टे तक खेलता रहा।

इतने में पिताजी आ गए। बोले : 'बेटे, जरा बाजार तक जाओ। वहाँ मैं कुछ मूलियाँ रख आया हूँ। तुम उठा लाओ।' लड़का दौड़ता हुआ गया और मूलियाँ ले आया।

(2)

यह किसका लड़का है ?

यह सिर से पैर तक क़ीमती कपड़े पहने हुए है। कहीं ठण्ड न लग जाए, और जुकाम न हो जाए, इसलिए एक के ऊपर एक यों तीन कपड़े पहन रखे हैं। सिर पर कानों को ढकने वाली क़ीमती टोपी पहनी है। पैर में छोटे मोजे हैं। मोजों पर बूट पहन रखे हैं। हाथ की अँगुली में एक क़ीमती अँगूठी है। गले में भी कोई गहना था तो सही। चेहरा साफ़ था। बाल सँवारे हुए थे। हाथ भी साफ़ और सुथरे थे।

लड़का जब चलने लगता, तो उसके पीछे चलने वाला नौकर उसको उठा लेता था। जब लड़का दौड़ने लगता, तो नौकर कहता : 'ज़रा सँभल-कर दौड़िए। गिरने से बचिए।' आमतौर पर तो नौकर उसको दौड़ने ही नहीं देता था। वह उसको अपनी अँगुली से ही हिलगाए रखता था। बच्चा चलते-चलते कुछ रुका तो नौकर ने कहा : 'भैयाजी, घणी खमा !' भैयाजी ने पूछा : 'यह क्या चीज है ?' नौकर ने कहा : 'भैयाजी, यह तो बैलगाड़ी है।' भैयाजी ने टोपी उतार डालने के लिए अपना हाथ कान पर रखा। नौकर ने कहा : 'भैयाजी, आपको ज़ुकाम हो जाएगा। माताजी ने टोपी निकालने से मना किया है।'

बच्चे ने पानी माँगा, और नौकर पानी लाने दौड़ा। पानी लाने में कुछ देर हुई, तो बच्चे ने कहा : 'तुम कैसे गधे हो ? पानी लाने में कितनी देर कर दी ?' नौकर ने अदब के साथ कहा : 'भैयाजी, भूल माफ कीजिए। मैं तो दौड़ता हुआ ही आया हूँ।'

(3)

यह किसका लड़का है ?

आँखों में कीच है। सिर पर लम्बे-लम्बे बाल हैं। नाख़ूनों में मैल भरा है। नाख़ून बहुत बढ़े हुए हैं। सिर से पैर तक नंगा है। पैरों पर और हाथों पर मैल चढ़ा है। न नहाने से सारे बदन पर सूखे हुए पसीने के धब्बे बने हुए हैं।

हाथ में रोटी का टुकड़ा है। धूप में बैठा-बैठा खा रहा है। नाक से रेंट बह रहा है। बहते रेंट को लम्बी साँस के साथ अन्दर खींच लेता है। रोटी खाता जाता है। घूमता-फिरता रहता है, और एक पैर से कूदा करता है।

बच्चे की माँ बाहर आती है। कहती है : 'बेटे, मेरे वापस आने तक तुम यहीं खेलते रहना। मैं अभी घास लेकर लौटती हूँ।' बच्चे ने कहा : 'माँ, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।' माँ बोलीं : 'बेटे, वहाँ क्या धरा है ? तुम यहीं बने रहो। देखो, यह लल्लू आ गया है, इसके साथ खेलो।'

माँ गईं। पास-पड़ोस से उसी के जैसे बच्चे इकट्ठा हो गए। सब मिलकर धूल की ढेरियाँ बनाने लगे। फिर वे उन ढेरियों पर मूते। गीली मिट्टी की गोलियाँ बनाने लगे। बनाते-बनाते आपस में झगड़ पड़े और एक-दूसरे को गालियाँ देने लगे। लेकिन कुछ देर के बाद फिर वहीं धूल के ढेर इकट्ठा करने लगे और फिर धूल का एक बड़ा-सा डूंगर खड़ा कर लिया। बाद में सब उसके चारों ओर चक्कर लगाने लगे। घास लेने गई माँ का बच्चा भी उनमें से एक था।

(4)

यह लड़का किसका है ?

कमर में कंदोरा है। पैरों में साँकड़े हैं। हाथ में अँगूठी और गले में गले का एक गहना है।

कपड़े गन्दे हैं। मुँह कुछ साफ है, पर गन्दा है।

लड़का बोलते समय थोड़ा तुतलाता है। लड़का ठीक-से कछोटा बाँधना जानता नहीं है, इसलिए उसको जैसे-तैसे कंदोरे के नीचे दबाए रहता है।

सुबह उठते ही लड़का दफ्तर-पट्टी लेकर बैठ जाता है, और पहाड़े लिखने लगता है। पहाड़े उसको बहुत पसन्द हैं। अपनी तोतली बोली में वह कविता रटता रहता है।

'एक नटखट छोकरा, जग्गू उसका नाम। करता बहुत शरारत, करता नहीं कोई काम।'

कोई इस लड़के से कभी पूछता ही नहीं कि वह रोज अपने दाँत माँजता है या नहीं माँजता? पर सबको इस बात की फिकर बनी रहती है कि वह अपना सबक़ याद करता है या नहीं।

लड़का रोज दुकान पर जाता है और अपने पिता के पास बैठता है। लड़का पाई, पैसा, दो पैसा, रुपया सब कुछ सँभालकर रखता है। लड़का एक पाई की गोलियाँ बराबर गिनकर देना जानता है। लड़का अपने पिता को बार-बार याद दिलाता रहता है: 'पिताजी! आपकी जेब में रुपए हैं। देखिए, कोई निकाल न ले!'

: 77 :

उनकी परेशानी

(1)

'आओ, तुम्हारे बालों में झटपट कंघी कर दूं। बाद में मुझको मौसी के घर पापड़ बेलने जाना है।'

'लेकिन आज तो तुम हमको देव-दर्शन के लिए ले जाने वाली हो न? तुमने कहा था न?'

'कहा तो था, लेकिन मौसी आई थीं और मैंने उनसे कहा था कि मैं उनके घर पापड़ बेलने पहुँचूंगी।'

'पर मौसी से पहले तो तुमने हमसे कहा था कि तुम हमको देव-दर्शन के लिए ले जाओगी।'

'लेकिन अब क्या किया जाए? क्या मौसी को दिया गया वचन तोड़ा जाए?'

'तो क्या हमको दिया गया वचन तुम तोड़ोगी?'

'किन्तु मौसी को दिए गए वचन का क्या होगा?'

'और हमको दिए गए वचन का क्या?'

(2)

'बाबूजी! आइए, अब हम धूप-छाँह का खेल खेलें।'

'लेकिन भई, आज तो मुझको चम्पकलालजी के घर जाना है।'

'क्या आपने हमको नहीं कहा था कि आज आप हमारे साथ धूप-छाँह का खेल खेलेंगे?'

'हाँ, कहा तो था, पर आज तो मैंने चम्पकलालजी को वचन दे दिया है।'

'तो क्या आपने हमको वचन नहीं दिया था?'

'लेकिन चम्पकलालजी को बुरा लगेगा। उनको दिए गए वचन का पालन तो करना ही चाहिए न?'

'तो क्या हमको दिया गया वचन तोड़ा जा सकता है?'

'किन्तु चम्पकलालजी को दिए गए वचन का क्या हो?'

'और हमको दिए गए वचन का क्या?'

: 78 :

चम्पा की शिक्षा

मेहमान आने वाले थे। माताजी ने और पिताजी ने सोचा: 'मेहमान के आ जाने पर ही रसोई बना लेंगे। शायद वे न भी आएँ।'

नौकर ने सोचा: 'आने के बाद पानी गरम कर दूँगा। इसमें देर लगती ही कितनी है?'

लेकिन जब नन्हीं चम्पा ने सुना कि मेहमान आने वाले हैं, तो वह तुरन्त ही बगीचे में पहुँच गई और वहाँ से फूल ले आई। अपने दूसरे सब काम एक तरफ रखकर वह माला गूँथने बैठ गई। वह माला गूँथती जाती थी और मेहमानों के बारे में सोचती जाती थी। मेहमान नहीं आए। सब कहने लगे: 'चम्पा, तुमने नाहक़ अपना समय खराब किया। नाहक़ इतने फूल बिगाड़े।'

क्या चम्पा मूर्ख है ?

❀ ❀ ❀

अहमदाबाद की अपनी पढ़ाई पूरी करके दीदी आज आने वाली थीं। तार आ चुका था। बड़े भैया अगवानी के लिए स्टेशन गए थे। दूसरे सब बैठे-बैठे गपशप करने में लगे थे। जाड़ो के दिन थे, इसलिए सब सिगड़ी के आसपास बैठकर ताप रहे थे। गाड़ी साढ़े आठ बजे आने वाली थी। अन्दाज़ यह था कि गाड़ी के आने पर आधे घण्टे के अन्दर यानी कोई नौ बजे तक सब घर आ जाएँगे। अभी तो सवा आठ ही बजे थे। रास्ते पर गाड़ी की आवाज़ सुनाई पड़ती, तो चम्पा तुरन्त दरवाज़ा खोलने पहुँच जाती। कहीं थोड़ी बातचीत सुनाई पड़ती, तो चम्पा दरवाज़े की तरफ बढ़ जाती। कहीं कोई खड़खड़ाहट होती, तो चम्पा दरवाज़े के पास पहुँचती और सोचती : 'शायद दीदी आ जाएँ !'

सब बोले : 'भला, यह चम्पा कैसी है ! अभी तो बहुत देर है, फिर भी चम्पा इतनी अधीर क्यों है ? इसमें तो थोड़ा भी धीरज नहीं है। नाहक़ ही बार-बार उठती है और परेशान होती है।'

क्या सचमुच चम्पा अधीर है ?

❀ ❀ ❀

एक दिन घर के दरवाज़े एक ग़रीब आदमी आया। बेचारे के साथ एक बच्चा भी था। ग़रीब आदमी भूखा था, और बच्चा भी भूखा ही था। माँ ने घर में से बासी रोटी दी। पिताजी बोले : 'इनको एकाध गरम रोटी भी दो। यह बालक बासी रोटी नहीं खा सकेगा।' बाप-बेटे दोनों बासी और ताज़ी रोटी खाने लगे। लेकिन रोटी सूखी थी, इसलिए बालक उसको धीरे-धीरे चबा कर खा रहा था। चम्पा घर में गई और बरनी में से घी ले आई। बोली : 'लो, इस बच्चे को बिना घी की रोटी अच्छी नहीं लगेगी।' माताजी और पिताजी दोनों चम्पा की तरफ देखने लगे। माँ ने कहा : 'इस लड़की में कोई अक्ल है ही नहीं ! यह समझती ही नहीं है कि घी किसको देना चाहिए और किसको नहीं। भला, भिखारी को घी क्या देना था ?'

क्या चम्पा में अक्ल नहीं है ?

❀ ❀ ❀

पड़ोस से कमला बहन की बेटी सरला चाय लेने आई। माँ जूठन साफ़ कर रही थीं। बड़े भैया अपना सबक़ याद कर रहे थे, और नन्हीं मुन्नी तो अभी भूखी ही थी। माँ ने पिता से कहा : 'आप इस सरला को थोड़ी चाय दे दीजिए। उस छोटे डिब्बे में से दीजिए।'

पिता बोले : 'यह दातौन तोड़कर अभी आया।'

चम्पा वहीं खड़ी थी। उसने बड़ा डिब्बा उठाया और एक कटोरी भर-कर चाय देते हुए कहा : 'यह ले जाओ। दो दिन चलेगी। इसकी चाय बढ़िया बनती है।' माँ चम्पा का मुँह ताकती रहीं। सरला वहीं खड़ी थी, इसलिए वे क्या कहतीं ? जब पिता आए, तो माँ ने कहा : 'इस चम्पा को तो किसी बात का कोई भान ही नहीं है ! चुटकी-भर चाय के बदले एक कटोरी चाय दे दी !'

क्या सचमुच चम्पा को कोई भान नहीं है ?

❀ ❀ ❀

सुमति की माँ और सुमति दोनों एक बार किसी काम के सिलसिले में एक रात चम्पा के घर रहीं। उनको अचानक ही रुकना पड़ा था, इसलिए वे अपने साथ अपने कोई कपड़े लाई नहीं थीं। सवाल उठा कि सुबह नहाने-धोने के बाद वे पहनें क्या ? चम्पा की माँ ने सुमति की माँ को नहाने के लिए एक साड़ी दी, और कहा : 'नहाने के बाद आप अपनी साड़ी पहन लेंगी, तो ठीक रहेगा।' लेकिन चम्पा ने कहा : 'सुमति, तुम तो नहाने के बाद आज मेरी यह घाघरी और पोलका पहन कर ही अपने घर जाना। कल लौटा देना।' माँ ने कहा : 'चम्पा ! सुमति को वैसे ही नहा लेने दो। नहा कर वह अपने कपड़े पहन लेगी।' चम्पा बोली : 'माँ, नहीं, मैं इसको अपने कपड़े दूंगी। इसके कपड़े तो कुछ मैले हो गए हैं।' चम्पा ने अपनी बढ़िया घाघरी और बढ़िया पोलका निकाला और माँ से कहा : 'माँ, ये अच्छे हैं न ? मैं सुमति से कह रही हूँ कि वह इनको पहन ले।' सुमति की माँ वहीं बैठी थीं। चम्पा की माँ ने अपनी आँखों से चम्पा की तरफ घूरा तो सही, पर वे

कुछ बोल नहीं पाईं। शाम को चम्पा की माँ ने चम्पा के पिता से कहा : 'अपनी इस चम्पा को तो कोई सूझ-समझ है ही नहीं। यह जानती ही नहीं है कि किसको कौन-सा कपड़ा दिया जाए, और कौन-सा नहीं दिया जाए !'

क्या सचमुच चम्पा को कोई सूझ-समझ है ही नहीं ?

❀ ❀ ❀

चम्पा और उसकी माँ, दोनों बैठी थीं। रामजी काका का लड़का पास की गली में से आया और वहाँ बैठ गया। चम्पा ने कहा : 'माधव, आज तो हमारे घर लड्डू बने थे।' माधव बोला : 'अच्छा ! तब तो तुम्हारी माँ ने लड्डू मेरे लिए ढंककर रखे होंगे।' चम्पा की माँ ने बात बदलते हुए कहा : 'बेटे, माधव, तुम इसके भुलावे में मत आना। यह चम्पा तो तुमको बना रही है।' चम्पा बोली : 'नहीं माधव, तुम सच मानो कि लड्डू बने थे और हम सब ने खाए थे। अभी कुछ और बचे भी हैं।' चम्पा की माँ लड्डू छिपाना चाहती थीं। ढंकने का उनका विचार नहीं था। लेकिन आखिर उनको ढंकने जाना पड़ा। रात जब चम्पा के पिताजी आए, तो उनको सारी जानकारी देकर उसकी माँ ने कहा : 'हमारी इस चम्पा को समझ कब आएगी ?'

क्या चम्पा को समझ की जरूरत थी ?

❀ ❀ ❀

एक बार चम्पा और हीरा दोनों साग-सब्ज़ी खरीदने गईं। हीरा ने एक सेर बैंगन खरीदे और चम्पा ने भी एक सेर खरीदे। घर आकर बैंगन रखे, तो हीरा के बैंगन कुछ ज्यादा लगे। दोनों के बैंगन तौलने पर चम्पा के एक सेर और हीरा के सवा सेर और एक छटांक निकले ! हीरा की माँ ने कहा : 'हीरा तो साग-सब्ज़ी खरीदना खूब जानती है।' हीरा बोली : 'भला, जानूँगी क्यों नहीं ? जब कुँजड़े का ध्यान दूसरी तरफ था, तभी मैंने एक बैंगन उठा लिया था।' चम्पा ने कहा : 'भला, इस तरह हम मुफ़्त का बैंगन क्यों लें ?' चम्पा की माँ बोलीं : 'हमारी इस चम्पा में थोड़ी भी होशियारी है ?'

क्या चम्पा होशियार है ?

* * *

गली में खेलते-खेलते लड़के आपस में झगड़ पड़े, और दो लड़के गुत्थमगुत्था हो गए। चम्पा पास ही खड़ी थी। उसने सोचा कि मैं इनको छुड़ा दूँ, नहीं तो ये एक-दूसरे के सिर फोड़ डालेंगे। चम्पा उनको छुड़ाने गई, तो एक लड़के ने उसको काट लिया। चम्पा के खून निकला। चम्पा अपने घर आकर पट्टी बाँध रही थी। तभी उसके पिताजी गरजे : 'उस हराम खोर को तो पत्थर मारना था, पत्थर ! वह दुबारा काटना भूल ही जाता !' माँ बोलीं : 'हमारी यह चम्पा तो कायर है, कायर !'

क्या चम्पा कायर है ?

* * *

चम्पा अपनी सहेलियों के साथ देव-दर्शन के लिए गई थी। मन्दिर में एक लड़की रो रही थी। उसकी माँ दर्शन करके घर चली गई और लड़की मन्दिर में ही रह गई। चम्पा ने कहा : 'चलो, हम इसको इसके घर पहुँचा दें।' दूसरी सहेली बोलीं : 'नहीं बहन, हमारे माँ-बाप हम पर नाराज़ होंगे।' चम्पा लड़की को उसके घर पहुँचाने गई। सहेलियाँ सब घर पहुँची और उन्होंने चम्पा की माँ को जानकारी दी। चम्पा की माँ वैसे ही अपने दरवाज़े के सामने खड़ी थीं। वे बोलीं : 'देखो भला ! यह चम्पा तो गँवार की गँवार ही रही है ! इस समय उसको उस लड़की के घर जाने की क्या ज़रूरत थी ? गरज होती, तो उसकी माँ आती, और उसको ले जाती।'

क्या चम्पा गँवार की गँवार ही रही है ?

: 79 :

जब रोते देखता हूँ

जब मैं किसी बालक को रोते देखता हूँ, तो सोचता हूँ : 'अरे ! इस बालक को रोना क्यों पड़ रहा है ?'

जब मैं किसी बालक को बेकार भटकते देखता हूँ, तो मेरे मन में विचार आता है : 'अरे ! कोई इसको किसी तरह का कोई काम क्यों नहीं दे रहा ?'

जब मैं किसी बालक को गालियाँ देते या किसी को चोट पहुँचाते देखता हूँ, तो सोचता हूँ : 'भई, इसके लिए कोई क्रीडांगन क्यों नहीं है ?'

जब मैं किसी बालक को पिटते देखता हूँ, तो सोचता हूँ : 'अरे रे ! यह पीटने वाला कितना पामर है ?'

जब मैं किसी बालक को बीच रास्ते में पेशाब करते, पाखाना फिरते या थूकते देखता हूँ तो मेरे मन में विचार आता है : 'अरे रे ! क्या इस बालक को कोई अच्छे संस्कार नहीं देगा ?'

जब मैं किसी बालक को 'हाथ-पाँव डोरी और पेट गगरी' की हालत में देखता हूँ, तो सोचता हूँ : 'क्या कोई इसका इलाज नहीं करेगा ?'

जब मैं किसी फोड़े-फुंसी वाले बालक को देखता हूँ, तो मेरे मन में सवाल उठता है : 'अरे ! कोई इसकी मरहम पट्टी क्यों नहीं करता ?'

: 80 :

मुझको वहाँ जाना अच्छा नहीं लगता

जब मैं वहाँ जाता हूँ, तो देखता हूँ कि बच्चे ने आँगन में ही टट्टी की है। टट्टी पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। जब भंगी आएगा, तभी टट्टी साफ़ होगी। माँ साफ़ करती है, तो उसको नहाना पड़ता है, और पिताजी तो कभी साफ़ कर ही नहीं सकते !

आँगन में ही गन्ने के छोते, काग़ज़ों के गोले, बेकार के ठीकरे, ईंटों के टुकड़े, और कपड़ों के चिथड़े पड़े रहते हैं। लेकिन जहाँ किसी को टट्टी की सफ़ाई का ख़याल न रहता हो, वहाँ इन चीज़ों को उठाने वाला भला, कौन हो ?

अन्दर जाकर देखता हूँ, तो घर के दरवाज़े के सामने ही जूते टेढ़े-मेढ़े पड़े मिलते हैं। कुछ जूते तो औंधे-चित्ते पड़े भी दीखते हैं। अगर ऐसी हालत में जूतों पर धूल जमी हो, और वे गन्दे हों, तो इसमें अचरज की बात ही क्या है ? इनको साफ़ रखने की फ़ुरसत ही किसे है ?

ओसारे में चक्कर लगाता हूँ, तो देखता हूँ, बच्चों के कपड़े जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं। किसी की किताब, किसी का रुमाल, किसी

के खिलौने, किसी का कुछ और किसी का कुछ, यहाँ-वहाँ पड़ा हुआ है। और ये सारी चीज़ें भी ऐसी कि इनको हाथ तक लगाने की इच्छा न हो। किताबों पर चढ़े गत्ते फटे हुए हैं, कपड़े गन्दे हैं, खिलौना पुराना और टूटा-फूटा है, मोटर टूट-फूटकर पिचक-सी गई है, रबड़ की चिड़िया का पेट फूट गया है। ऐसे न जाने कितने टूटे-फूटे खिलौने बिखरे पड़े होते हैं।

मुझको वहाँ जाना अच्छा नहीं लगता।

: 81 :

माँ कहती हैं

माँ कहती हैं : 'ज़रा सँभल कर चलो। गिर पड़ोगी।' फिर भी मैं गिर पड़ती हूँ।

पिताजी कहते हैं : 'अब सो जाओ। सुबह जल्दी जागना है।' इसके बाद भी मुझको नींद नहीं आती।

माँ कहती हैं : 'जल्दी जाओ और थाली ले आओ।' लेकिन मैं जल्दी चल नहीं पाती।

पिताजी कहते हैं : 'सही-सही बोलने में तुम ग़लती क्यों करते हो ?' फिर भी मैं बार-बार ग़लती करता रहता हूँ।

माँ कहती हैं : 'बेटे, रोओ मत। रोना नहीं चाहिए।' फिर भी मुझको रुलाई आ ही जाती है।

माँ कहती हैं : 'दूसरों के घर चुप रहा करो।' फिर भी मैं बोलने लगता हूँ।

पिताजी कहते हैं : 'बेटे, बिना पूछे आँगन में मत जाया करो।' इसके बावजूद मैं आँगन में चला जाता हूँ।

: 82 :

मेरा बच्चू

मेरा बच्चू बाल-मन्दिर जाता है। घर आने के बाद भोजन के समय वह कहता है : 'माताजी ! बाल-मन्दिर में तो नाश्ते के समय मैं हाथ धोता हूँ, पाँव धोता हूँ और मुँह धोता हूँ। यहाँ भी पाँव धोलूँ ?'

परोसते समय वह कहता है : 'माताजी ! बाल-मन्दिर में मैं नाश्ता परोसता हूँ। यहाँ भी परोसूँ ? लाइए, मैं परोस दूँ। न आवाज़ होने दूँगा, न दाल फैलने दूँगा। थाली भी सँभाल कर दूँगा। धीमे पैरों चलूँगा। धीमे-धीमे परोसूँगा।'

बच्चू इस तरह अपनी माँगें रखता रहता है। मैं भी उसको वैसा करने के मौक़े देती रहती हूँ। बच्चू तो साबुन लेकर अपने हाथ, पैर, मुँह सब साफ़ कर लेता है। उसको थोड़ी देर ज़रूर लगती है। लेकिन अपने सारे काम वह ख़ुद बड़ी होशियारी के साथ कर लेता है।

इसके बाद अपने नन्हे-नन्हे हाथों में थाली लेकर वह सबको ख़ुशी-ख़ुशी परोसता है। कटोरी में से न तो दाल गिरती है, और न हाथ से थाली ही छूटती है।

वह परोसने का अपना सारा काम बड़ी ज़िम्मेदारी के साथ और पूरी गम्भीरता के साथ निपटाता है।

बाद में जब खाने बैठता है, तो कहता है : 'बाल-मन्दिर में तो चबा-चबाकर खाने को कहा जाता है। मैं भी खूब चबाकर खाता हूँ।'

खा चुकने पर अपनी थाली-कटोरी अच्छी तरह माँजकर लाता है।

इस तरह बाल-मन्दिर का प्रभाव मुझको जहाँ-तहाँ देखने को मिलता है।

रात होते ही बच्चू कहानी सुनना चाहता है। मैं अपने ढंग से उसको कहानियाँ सुनाता हूँ। बाद में उसकी बारी आती है। वह तो हमको थका-थका देता है। चूहे की कहानी खतम होते ही सूरज-चाँद के झगड़े की कहानी शुरू कर देता है। बाद में सियार की कहानी कहता है। फिर ठण्डी बूँद की कहानी। यों कहानियों की एक लम्बी कतार लग जाती है। मेरा बच्चू अभी कुछ ही दिनों से बाल-मन्दिर जाने लगा है। लेकिन इस बीच उसने बहुत-कुछ सीख-समझ लिया है।

: 83 :

अनाथ बालक

वह बालक अनाथ बालक है, जिसके पिता के नौकर बालक को धमकाते और मारते-पीटते हैं।

वह बालक अनाथ बालक है, जिसके माँ-बाप इस बात का ध्यान ही नहीं रखते कि बालक कहाँ है और क्या करता है ?

वह बालक अनाथ बालक है, जिसको फोड़े-फुन्सी हुए हों, कान में से पीव बहता हो, दाँत सड़ रहे हों, सिर में जूँ पड़ी हो, फिर भी जिसको कोई दवाखाने न ले जाता हो।

वह बालक अनाथ बालक है, भूख लगने पर भी जिसको भोजन कराने के लिए भोजन बनाने वाली अपने आलस्य के कारण उठती नहीं है।

वह बालक अनाथ बालक है, जिसके माता-पिता पास में पैसा होने पर भी उसको उसकी ज़रूरत की चीज़ें देते नहीं हैं।

वह बालक अनाथ बालक है, जिसके नौकर या आया तय करते हैं कि उसको क्या पहनना है और क्या नहीं पहनना है।

वह बालक अनाथ बालक है, जिसको अपने माता-पिता के मित्रों के सामने, उनको ख़ुश करने के लिए, गाना अथवा नाचना पड़ता है।

: 84 :

आपका क्या ख़याल है ?

(1)

'माँ ! मैं दीदी के साथ हवेली जाऊँ ? मैं श्रीनाथ जी के दर्शन करना चाहती हूँ।'

'जाओ, ज़रूर जाओ।'

'पिताजी ! मैं आज उपवास करूँ ? आज शिवरात्रि है।'

'हाँ, करो, ज़रूर करो।'

'माँ ! मैं रसूल भैया के साथ मस्जिद में जाऊँ ? मैं देखना चाहता हूँ कि वहाँ नमाज़ कैसे पढ़ी जाती है ?'

'जाओ, देख आओ।'

'पिताजी ! मैं मेरी बहन के साथ गिरजाघर जाऊँ। मुझको भी वहाँ प्रार्थना करनी है।'

'जाओ, गिरजाघर ज़रूर देख आओ।'

(2)

'माँ ! मोती बहन के साथ मैं हवेली हो आऊँ !'

'नहीं, हमको वहाँ नहीं जाना है। तुम शंकर के मन्दिर में हो जाओ।'

'पिताजी ! मैं शिवरात्रि का उपवास करूँ?'

'नहीं भाई, हमें शिवरात्रि का उपवास नहीं करना है। हम तो एकादशी का उपवास कर सकते हैं।

'माँ ! रसूल भाई के साथ मैं मस्जिद जाऊँ?

'मस्जिद ! भला, हम मस्जिद में कैसे जा सकते हैं? क्या तुम मुसलमान हो?'

'पिताजी ! मेरी बहन के साथ मैं गिरजाघर जाऊँ? मुझको वहाँ प्रार्थना करनी है।'

'तुम तो मूर्ख हो। क्या तुम ईसाई बन गए हो? नहीं, हम वहाँ नहीं जा सकते।'

: 85 :

क्या एक ही गिलास से पानी पिया जा सकता है?

एक व्यक्ति को टोकते हुए मैंने कहा : 'भले आदमी, ये सब लड़के एक ही गिलास से पानी पी रहे हैं, यह तो अच्छी बात नहीं है। इससे तो एक-दूसरे के मुँह के और दूसरे रोग भी एक-दूसरे को लग सकते हैं।'

उस व्यक्ति ने कहा : 'ये सब तो आपस में भाई-बहन हैं। इनको कुछ नहीं होता।'

मुझको उस व्यक्ति की बात सही नहीं लगी।

पाठक के नाते आप सबको यह बात कैसी लगती है?

डॉक्टर कहते हैं : 'पानी इस तरह नहीं पीना चाहिए। या तो सबको अपने-अपने गिलास अलग रखने चाहिए, या पानी चुल्लू से पीना चाहिए, या बिना मुँह लगाए ऊपर से पीना चाहिए।'

लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहार में हम क्या देखते हैं? कई परिवारों में लोग एक-दूसरे के गिलास से पानी पीते रहते हैं। इस तरफ किसी का ध्यान जाता ही नहीं है।

स्वयं मैंने तो अपने बाल-मन्दिर में और घर में सबके लिए अलग-अलग गिलास रखे हैं। मेरी इस टिप्पणी को पढ़ने वाले पाठक क्या करेंगे? हर एक के लिए अलग गिलास रखने में खर्च तो थोड़ा बढ़ेगा ही, बहुत ही थोड़ा। पर फ़ायदा बहुत बड़ा होगा। सब एक-दूसरे के छुतहे रोगों से बचेंगे। सफाई और शिष्टता दोनों का पालन होगा। क्या सब कोई अपने-अपने गिलास तुरन्त ही अलग रखना शुरू कर देंगे?

: 86 :

खजूर नहीं भाती

बालक एक साथ बैठ कर नाश्ता कर रहे थे।

नन्हीं विमला ने अपनी कटोरी की थोड़ी खजूर वापस दे दी।

पास बैठे हुए शिक्षक ने अपने इस अवलोकन पर से अपना एक विचार बनाया : 'विमला आजकल बीमार रहने लगी है। वह कितनी समझदार है? न खाने लायक चीज उसने खुद ही लौटा दी।'

शिक्षक का अपना चिन्तन चल रहा था, इसी बीच विमला ने अपनी एक सहेली से कहा : 'मुझको तो खजूर भाती नहीं है, इसलिए मैंने वापस कर दी।'

शिक्षक का चिन्तन वहीं रुक गया।

: 87 :

पिताजी साथ में नहीं हैं

बग्घी में बैठकर बालक घूमने निकले थे। वे घूमकर लौट रहे थे। सब बहुत खुश दिखाई पड़ते थे। गाड़ी धीमे-धीमे मेरे पास आई।

मैंने अपने मन में सोचा : 'इन बालकों के पिता कितने समझदार हैं? लगता है कि अपने बालकों के आनन्द के लिए वे ऐसी व्यवस्था करते रहते

हैं। मैं चाहता हूँ कि हर एक पिता अपने बालकों को घूमने जाने दें। उनको खुली हवा का और खुली कुदरत का आनन्द लूटने दें। देखो, ये बालक इस हँसती कुदरत के साथ कैसे हँस रहे हैं ! सचमुच इनके पिता के प्रति मेरे मन में सम्मान की भावना जागती है।'

जब बग्घी मेरे पास से निकली, तो बालकों में से एक बालक के मुँह से निकला यह वाक्य मैंने सुना : 'आज इस बग्घी में हमको बड़ा मजा आ रहा है, क्योंकि आज पिताजी हमारे साथ नहीं हैं।'

सोचिए, अब इन बच्चों के पिता के प्रति मेरे मन में कितना सम्मान रहा होगा ?

: 88 :

माँ को पसन्द नहीं है

चपला और लक्ष्मी दोनों आपस में बातें कर रही थीं।

चपला ने कहा : 'लक्ष्मी, मुझको तुम्हारी यह खटिया बहुत अच्छी लगती है। तुम्हारी ही तरह मैं भी चाहती हूँ कि खटिया पर अकेली ही सोऊँ।'

लक्ष्मी बोली : 'तो तुम सोती क्यों नहीं हो ?'

चपला ने कहा : 'मेरी माँ मेरे लिए खटिया बुनवाती ही नहीं हैं। जब बुनवा देंगी, तभी मैं उस पर सो सकूँगी।'

लक्ष्मी बोली : 'मैं तुम्हारी माँ से कहूँगी कि वे तुम्हारे लिए खटिया बुनवा दें।'

चपला ने कहा : 'बात यह है कि माँ को मेरे बिना अच्छा नहीं लगता। मुझको अपने साथ सुलाने के लिए ही वे खटिया बुनवाती नहीं हैं।

लक्ष्मी बोली : 'यह तुम क्या कह रही हो ?'

चपला ने कहा : 'मैं सच ही कह रही हूँ। माँ मुझको जबरदस्ती अपने साथ सुलाती हैं। मुझको तो अलग सोना बहुत अच्छा लगता है, पर माँ को यह पसन्द नहीं है।'

: 89 :

मुझको चोट लगी

नन्हीं बिन्दु रोने लगी।

'बिन्दु बहन, क्या हुआ ? तुमको किसने मारा ?'

'कुछ कहो तो। तुमको किसने मारा ?'

बिन्दु रोती रही।

माँ ने चिड़चिड़ी आवाज़ में कहा : 'यह चम्पा जो है, इसी ने इसको मारा होगा।'

अपनी बात जोड़ते हुए पिताजी बोले : 'इस चम्पा की तो आदत ही ऐसी है। ख़बरदार ! आगे कभी बिन्दु को हाथ लगाना मत !'

माँ ने चम्पा को पीटने के लिए अपना हाथ उठाते हुए कहा : 'यह चम्पा है ही ऐसी।'

बिन्दु ने रोना बंद कर कहा : 'माँ, चम्पा ने मुझको नहीं मारा। यह तो उसकी वजह से मुझको लग गई। इसमें चम्पा का कोई कसूर नहीं है।'

: 90 :

देखो···वे पिताजी आ रहे हैं !

(1)

'आ-हा ! देखो वे पिताजी आ रहे हैं !'

'अच्छा ! तो अब मैं बाद में पढ़ूंगा।'

'आज मैं पिताजी को अपनी बनाई जूतों की वह कतार दिखाऊँगा। पिताजी कहेंगे, बहुत बढ़िया है।'

'ज़रा रुको। मैंने मिट्टी के खिलौने बनाए हैं। मैं उनको ऊपर से ले आता हूँ।'

'ज़रा इधर आओ। मेरी यह बाँह चढ़ा दो। मेरे हाथ स्याही वाले हैं। मैं पिताजी की दवात और होल्डर साफ़ कर रहा हूँ।

'पिताजी की उस किताब में तुमने कुछ निशानियाँ लगा रखी हैं न ? निशानी वाले वे चित्र पिताजी को दिखाने हैं।'

(2)

'देखो, वे पिताजी आ रहे हैं!'

'जाओ, जाओ, जल्दी अपनी किताब लेकर बैठ जाओ। नहीं तो तुम्हारी बारह बज जाएगी।'

'देखो, अपने वे जूते रास्ते में से हटा लो। पिताजी देखेंगे, तो पीटेंगे।'

'कौन, पिताजी आ रहे हैं! देखो, मुझको झटपट अपने हाथ धो लेने दो। नहीं तो वे पूछेंगे, हाथ मिट्टी में क्यों साने हैं?'

'सुनो रुक्मिणी! तुम अपनी साड़ी का पल्ला ठीक कर लो। पिताजी आ रहे हैं। क्या तुम भूल गई हो कि कल उन्होंने तुम्हारे कान खींचे थे?'

'भई, पिताजी की वह पुस्तक वहीं रख दो। कल उन्होंने कहा था न कि खबरदार! मेरी पुस्तकों को कोई हाथ मत लगाना?'

: 91 :

आप क्या सोचते हैं?

शिवजी भाई बहुत सख्त मिज़ाज के थे। घर में उनके चार बच्चे थे। रतन, अमृत, रमा और उमा। अपने पिताजी का नाम सुनकर चारों बच्चे काँपने लगते थे। जब शिवजी भाई के घर लौटने का समय होता, तो सब बच्चे अपना-अपना सबक़ याद करने बैठ जाते। कोई ज़रा भी चूं-चपड़ न करता। जब तक शिवजी भाई घर में रहते, तब तक सब बच्चे सीधे और सयाने बने रहते। ज्योंही शिवजी भाई बाहर जाते, त्योंही बच्चों का उछलना, कूदना, धक्का-मुक्की, खेल-तमाशा और नाचना-गाना शुरू हो जाता। किताबों को तो कोई हाथ लगाता ही नहीं।

शिवजी भाई अपने मन में समझते होंगे कि उनके बच्चे कितने सीधे, सयाने और मेहनती हैं?

शिवजी भाई सोचते होंगे कि देखो, मेरा रौब कितना बढ़िया काम कर रहा है?

शिवजी भाई यह भी मानते होंगे वे अपने बच्चों को सीधा-सयाना रखने में बहुत कुशल हैं।

भले ही शिवजीभाई ये सारी बातें मानते रहें, लेकिन इस विषय में आप सब क्या सोचते हैं?

: 92 :

वह शान्ति-भंग क्यों करता है?

बाल-मन्दिर में शान्ति का खेल बार-बार होता रहता है। बालक किसी एक कमरे में इकट्ठा होते हैं। शान्ति-पूर्वक बैठते हैं। हाथों का हिलना बन्द हो जाता है। न पैर हिलते हैं, न सिर हिलते हैं। सब बालक स्थिर भाव से बैठ जाते हैं। धीरे-धीरे कमरों के दरवाज़ों पर लगे परदे गिरते हैं। कुछ दरवाज़े भी बन्द हो जाते हैं। उजाले वाले कमरे में अँधेरा होने लगता है। हलका-सा मजेदार उजाला रहता है। उस समय वहां एक बहुत ही सुन्दर दृश्य खड़ा हो जाता है। चारों ओर शान्ति हो जाने पर संगीत शुरू होता है। सब संगीत सुनने में तल्लीन हो जाते हैं। तभी ऊँ···ऊँ और एँ···एँ की आवाज़ आती है, और शान्ति के खेल में गड़बड़ पैदा होती है। रोने वाले बच्चे का नाम रामजी है। वही रोते-रोते उठता है, और भाग जाने के लिए दरवाज़े तक पहुँचता है।

पूछताछ करने से पता चलता है कि जब रामजी अपने घर में कुछ ऊधम मचाता है, तो उसके पिताजी उसको या तो एक अँधेरे कमरे में बन्द कर देते हैं, या बन्द करने की धमकी देते हैं।

बाल-मन्दिर के अँधेरे कमरे में रामजी को अपने उस डर की और अनुभव की याद आ जाती है, और वह शान्ति के खेल के रंग में भंग कर देता है।

: 93 :

जूठन क्यों खाती है?

बाल-मन्दिर में रोज नाश्ता होता है। नाश्ते के बाद सब बालक खेलने चले जाते हैं। चन्द्रप्रभा देर तक खाती रहती है। वह बहुत धीमे-धीमे खाती है और पिछड़ जाती है। रोज़ सबके अन्त में वही देर से निकलती है।

शिक्षक ने सोचा : 'इसका कारण धीमे-धीमे खाने की इसकी आदत है, या कोई और बात है ?'

शिक्षक ने दूर से निगाह रखी। पता चला कि सब बालकों के जाने के बाद चन्द्रप्रभा दूसरे बालकों की रकाबियों में छूटी हुई चीज़ें उठाकर खा लेती है।

शिक्षक ने उससे प्रेम-पूर्वक पूछा : 'चन्द्रप्रभा बहन, दूसरों की रकाबियों में छूटी चीज़ें तुम क्यों उठाती हो ?'

चन्द्रप्रभा ने कहा : 'मुझको भूख लगती है और आप तो थोड़ा ही खाना देते हैं।'

शिक्षक ने पूछा : 'क्या तुम अपने घर से भोजन करके नहीं आती हो ?'

चन्द्रप्रभा बोली : 'आती तो हूँ, लेकिन माँ मुझको पूरा भोजन नहीं देतीं। माँ कहती हैं कि ज्यादा खाओगी, तो दस्त लगने लगेंगे और तुम बीमार पड़ जाओगी। यों कहकर और मुझको थोड़ा-सा खिलाकर थाली पर से उठा देती हैं।'

बात शिक्षक के ध्यान में आ गई कि चन्द्रप्रभा जूठन क्यों खाती है।

: 94 :

माँ और बालक

माँ : 'लेकिन तुम ज़रा सीधे तो खड़े रहो। इस तरह थेई-थेई क्या करते हो ?'

बालक : 'माँ, मुझको ठण्ड लग रही है। मैं खड़ा नहीं रह पाता हूँ।'

* * *

माँ : 'मैंने तुमको अभी पाजामा पहनाया था। तुमने उसको तुरन्त ही क्यों उतार दिया ? भई, तुम ऐसा क्यों करते हो ?'

बालक : 'माँ, पाजामे में एक चींटी थी, जो काट रही थी।'

* * *

माँ : 'खबरदार ! तुम इधर आओगे, तो मैं तुमको मार ही डालूँगी।'

बालक : 'अगर तुमको यही करना है, तो मेरे बीमार पड़ने पर तुम मुझको दवा क्यों देती हो ?'

* * *

माँ : 'देखो, तुमने यह रकाबी गिरा दी और फोड़ डाली।'

बालक : 'मैंने रकाबी गिराई नहीं। चिकनी थी, इसलिए वह फिसल गई।'

* * *

माँ : 'आखिर मैं करूँ भी तो क्या करूँ ? तुमने तो इस कपड़े के टुकड़े-टुकड़े कर डाले !'

बालक : 'माँ, मैंने सारे कपड़े के टुकड़े किए नहीं हैं। सिर्फ दो टुकड़े किए हैं। मुझको अपने पैर में पट्टी बांधनी है।'

* * *

माँ : 'बेटे, तुम इस तरह लगातार हिलते-डुलते क्यों हो ? क्या तुम अच्छी तरह सोना भी नहीं जानते ?'

बालक : 'माँ, ये मच्छर गुनगुनाते हुए मेरे कानों तक आते हैं।'

* * *

माँ : 'बेटे, अब तुम झटपट नहाने उठोगे या नहीं ? कब तक खेलते रहोगे ?'

बालक : 'लेकिन माँ, तुमने तो कहा था कि मैं तुम्हारे बुलाने पर आऊँ। तुमने तो मुझको एक बार भी बुलाया नहीं है।'

* * *

माँ : 'बेटे, यह तुम्हारी कितनी बुरी आदत है ? खाते समय इतना पानी क्यों पीते हो ?'

बालक : 'माँ, साग में मिर्च इतनी ज्यादा है कि मुंह जलने लगता है।'

: 95 :

मताग्रह और स्वतंत्रता

(1)

मैं कहता हूँ कि रोज़ देव-दर्शन के लिए जाना चाहिए।

भई, तुम पाजामा ही पहनो। तुम्हारा पाजामा पहनना ही मुझको अच्छा लगता है।

अरे, तुमने अपने ये बाल इस तरह क्यों सँवारे? देखो, मेरी तरह सँवारो।

भला, इसमें हर्ज क्या है? थोड़ी-थोड़ी मिर्च खाना भी सीख लेना चाहिए।

बेटे, इस तरह मत बैठो। इस तरह बैठने से हम बुरे नजर आते हैं।

भला, हाथ ऐसे धोए जाते हैं? हाथ तो कुहनी-कुहनी तक धोने चाहिए।

बाजरे की रोटी अच्छी लगनी ही चाहिए। मुझको तो बहुत ही अच्छी लगती है।

(2)

भई, जिसको देव-दर्शन के लिए जाना हो, वह जाए।

तुमको जो अच्छा लगे, सो पहनो। पाजामा अच्छा लगे, तो पाजामा और घाघरी अच्छी लगे, तो घाघरी।

तुमने अपनी पसन्द से बाल सँवारे और मैंने अपनी पसन्द से सँवारे।

सुनो, तुम खा सको, तो यह मिर्च वाला साग खाओ, नहीं तो यह फीका साग भी है।

बेटे, तुम इस तरह बैठो। इस ढंग से बैठोगे, तो बैठने वालों के लिए और जगह हो जाएगी।

बेटे, हाथ जरा मलकर धो लो। जहाँ तक गन्दे हुए हैं, वहाँ तक धो लो।

बेटे, तुमको बाजरे की रोटी अच्छी न लगे, तो तुम गेहूं की रोटी खा लो, किसी को अच्छी नहीं भी लगती है।

: 96 :

प्रश्न क्यों नहीं पूछता था?

जब हीरालाल बाल-मन्दिर में भरती हुए, तो वे चार साल के थे।

देखने-सुनने में सुन्दर और सुरूप थे। कपड़े भी साफ़-सुथरे और अच्छे पहन कर आते थे।

बाल-मन्दिर में हीरालाल का एक साल पूरा हुआ। सब बालक कोई-न-कोई प्रश्न पूछते रहते थे, लेकिन इस दृष्टि से हीरालाल बराबर गूंगे ही बने रहे। उनके मुंह से कभी कोई प्रश्न निकला ही नहीं। मानो हीरालाल के मन में कुछ भी जानने की कोई इच्छा ही न रही हो।

बाल-मन्दिर के शिक्षक के मन में विचार जागा: 'आखिर इसका कारण क्या है?' बाल-मन्दिर का शिक्षक तो अवलोकन करने वाला और अवलोकन के बाद खोज करने वाला होता है: 'हीरालाल प्रश्न क्यों नहीं पूछते हैं? सहज जिज्ञासा तो उनमें भी होगी ही। होनी ही चाहिए।' शिक्षक के मन में चिन्तन चलता रहता था।

शिक्षक ने हीरालाल के साथ खेलने और घूमने-फिरने वाले बालकों का और हीरालाल का निरीक्षण उनके पीछे खड़े रहकर किया। वहाँ भी हीरालाल ने कभी कोई प्रश्न नहीं पूछा।

शिक्षक ने सोचा: 'क्या हीरालाल के घर की कोई स्थिति तो इसके मूल में नहीं न है?'

और सचमुच इसका कारण तो घर की स्थिति में ही था। हीरालाल अपनी माँ से या अपने पिता से प्रश्न कब पूछें? पिता दिन भर अपने व्यापार-व्यवसाय में उलझे रहते थे। माँ सारे दिन सभा-सम्मेलनों में और घर के काम-काज में व्यस्त रहा करती थीं। नौकर सवालों के जवाब कैसे देते हैं, इसको तो हम सब जानते ही हैं।

: 97 :

क्या आज भी ऐसा होता है?

(1)

'भला, याद क्यों नहीं रहता? रोज़-रोज भूल क्यों जाते हो? हम बराबर रटते रहें, तो हमें याद क्यों न रहे? जब हम छोटे थे, तो ऐसा ही करते थे। जब याद न रहता, तो चट्ट से एक तमाचा पड़ता।

उठो, रटना शुरू करो। इस तरह आँखें फाड़कर मेरी तरफ क्यों देख रहे हो ? बिना रटे याद कैसे रहेगा ? और याद नहीं रखोगे, तो भीख ही माँगनी पड़ेगी, भीख ! और, आज तो तुमको भीख भी कौन देगा ? भूखों मर कर घर-घर भटकना पड़ेगा।'

(2)

'तुम ताड़ की तरह बढ़ तो गई हो, लेकिन क्या तुम घर का एक भी काम करना जानती हो ? एक तिनके के दो टुकड़े भी तो तुम नहीं करती हो। बस, एक बढ़ना जाना है, उछलना-कूदना जाना है, और दो बार डट कर खाना जाना है। वहाँ ससुराल में सास कोई तुम्हारी सगी नहीं होगी। तुमको जनम देने वाली माँ हूँ इसलिए मैं तो सब निबाह लेती हूँ। याद रखना, तुम वहाँ पर हैरान परेशान हो जाओगी !'

: 98 :

सेठानी, गाड़ीवान और बच्चे

(1)

'सुनो, इधर आओ, इधर ! आज तुम इतनी देर से क्यों आए ? क्या तुमको होश नहीं है कि ये बच्चे यहाँ तुम्हारी राह देखते बैठे हैं ? याद रखो, कल देर करके मत आना। तुमने देर की, तो तुम्हारी तुम जानो। क्या तुम जानते नहीं हो कि इन बच्चों को रोज़ घुमाने ले जाना है ? सेठजी का हुक्म क्या है ? देखो आज तो मैं तुमको छोड़े देती हूँ। कल तो मैं सेठजी से ही कहूँगी। जाओ, गाड़ी तैयार करके बच्चों को ले जाओ !'

(2)

'बच्चो ! इधर आओ, इधर ! घूमने जाने का समय हो चुका है। मैं तुमको कितनी देर से पुकार रहा हूँ, लेकिन तुम आ ही नहीं रहे हो। आगे से मेरी पुकार सुनकर फौरन आ जाया करो। नहीं तो मैं गाड़ी लेकर चला जाऊंगा। याद रखना। कल समय पर आ ही जाना। सेठानी जी ने क्या कहा है ? साँझ पड़ने से पहले सबको वापस लाना है। आओ, झट गाड़ी में बैठ जाओ। आओ तो तुमको छोड़ देता हूं।'

: 99 :

अपने खेलते हुए बालकों से

फ़ौजदार : 'सुनो, चुप रहो ! यह शोर कौन मचा रहा है ? क्या तुमको मार खानी है ?'

वकील : 'देखो, यहाँ गड़बड़ मत करो। उधर, उस तरफ चले जाओ। यहाँ हम काम कर रहे हैं।'

प्रोफ़ेसर : 'ज़रा सुनो ! इन बच्चों से कहो, ज़रा दूर जाकर खेलें। यहाँ मैं पढ़ रहा हूं।'

डॉक्टर : 'बच्चो ! तुम भागते हो या नहीं ? क्या तुमको दवा पीनी है ?'

शिक्षक : 'सुनो, रतन और जमुना, तुमने इतना हल्ला क्यों मचा रखा है ? तुम सब चुप रहो !'

मोण्टीसोरी-शिक्षक : 'क्या तुम वहाँ जाकर खेल सकोगे ? यहाँ मैं थोड़ा काम कर रहा हूँ।'

किण्डर गार्टन-शिक्षक : 'बच्चो ! तुम सब वहाँ, उस जगह जाओ। वह कितनी सुन्दर और बढ़िया जगह है ? तुम वहीं पहुँचो। खेलने के लिए वह बहुत ही अच्छी जगह है।'

नरम दिल पिता : 'सुनो, भाइयो ! शोर मत करो ! मुझको तकलीफ़ होती है।'

हिकमती पिता : 'सुनो, चन्दन और कंचन ! तुम तो बहुत समझदार बच्चे हो ! यहाँ मत खेलो, भला ! यहां मैं काम कर रहा हूँ। तुम उधर चले जाओ।'

थका हुआ पिता : 'ओफ् ! ये बालक तो बहुत ही परेशान करते हैं ! बच्चो ! तुम यहाँ से तुरन्त चले जाओ। उधर उस तरफ जाकर खेलो।'

चिढ़ा हुआ पिता : 'तुम सब उधर जाते हो या नहीं ? बोलो, जाओगे या नहीं ? अगर नहीं गए तो...।'

कुम्हार : 'अरे, गधो ! तुम यहाँ से भागते हो या नहीं ? बस, मेरे उठने की ही देर है। मैं तुम सबको अपने इस डण्डे से पीटूँगा।'

लुहार : 'बच्चो ! तुम भागते हो या नहीं ? न भागे, तो मैं तुमको इस जलते कोयले से मारूँगा।'

नाई : 'बाप रे, बाप ! ये बच्चे यहाँ कितना ऊधम मचा रहे हैं ? जाओ, उधर मुँडाओ, उधर ! दो घड़ी आराम तो करने दो !'

अनाड़ी माँ : 'हे राम ! इन बच्चों ने तो हद ही कर दी है ! ऐ रतन, ऐ मदन, तुम दोनों दूर जाते हो या नहीं ?'

रसोई बनाती हुई माँ : 'लीला और विनोद ! तुम दोनों यहाँ से भागते हो या नहीं ? न भागे तो अपने इस बेलन से मैं तुमको पीट दूँगी।'

पुस्तक पढ़ती हुई माँ : 'यह कौन शोर मचा रहा है ? जाओ, उधर उस कमरे में जाकर बैठो और पढ़ो। सबक़ तो याद करते नहीं हो और इधर-उधर भटकते रहते हो।'

सेठानी माँ : 'देखो, शिक्षक अभी तक क्यों नहीं आए ? इन बच्चों ने मेरा सिर खा डाला है। शिक्षक से कहना पड़ेगा कि वे जल्दी आया करें।'

अनपढ़ स्त्री : 'सुनो, यहाँ तुम्हारा यह तमाशा नहीं चलेगा। जाओ, गली में जाकर वहाँ खेलो। वहाँ खूब लम्बी-चौड़ी जगह पड़ी है।'

विद्वान पिता : 'सुनो रमेश, राजश्री, तुम यहाँ मत खेलो। यहाँ हम अपने काम में लगे हैं। तुम उधर जाकर खेलो।'

तेली : 'बच्चो ! तुम भागते हो या नहीं ? याद रखना, इस बैल के बदले मैं तुमको घानी में जोत दूंगा।'

मोची : 'हे राम ! इन बच्चों ने तो हद ही कर दी है। सुनो, उस दीवार के पास जाकर खेलो। मेरी यह राँपी देखी है ?'

बनिया : 'इधर आओ, इधर ! पाठ तैयार किए बिना तुम खेलने कहाँ जा रहे हो ? आओ, यहाँ आकर पढ़ने बैठो। खेलते ही रहोगे, तो पढ़ोगे क्या ?'

ब्राह्मण : 'अब तुम अपना खेल बन्द करोगे या नहीं ? खेलते-कूदते ही रहोगे, तो भीख माँगनी पड़ेगी, भीख ! जाओ, चुपचाप पढ़ने बैठ जाओ।'

अधिकारी : 'सुनो जसवन्त ! ये बच्चे घर में शोर मचा रहे हैं। तुम इनको घुमाने ले जाओ। कुछ देर के लिए इनको बगीचे में ले जाओ।'

दरजी : 'अरे भाई, खेल से पेट नहीं भरेगा। जरा, चुप बैठो, चुप !'

: 100 :

अर्धदग्ध आया का अर्थ

आया का मतलब है, एक अर्धदग्ध, थोड़ी अंग्रेजी पढ़ी-लिखी और पेट के लिए नौकरी करने वाली स्त्री।

आया का मतलब है, सेठ के हिसाब से एक ऐसा होशियार और लायक व्यक्ति जो बालकों की सार-सँभाल का काम कर सके।

आया का मतलब है, सेठानी के हिसाब से एक ऐसी जगह, जहां बच्चों को सेठानी से दूर रखा जा सके।

आया का मतलब है, ऐसे रूप-रंग वाली वह आकृति, (स्त्री) जिसको बालक अधिकतर पसन्द न करें।

आया का मतलब है, धनवानों के घरों का एक आवश्यक आभूषण।

आया का मतलब है, अमीरों और उमरावों की पदवी को सुशोभित करने वाला एक अतिरिक्त साधन।

आया का मतलब है, शिक्षा के मर्म को समझने का दावा करने वालों के लिए इस बात के सन्तोष का एक साधन कि वे अपने बालकों के लिए कुछ कर रहे हैं।

आया का मतलब है, एक ऐसा पात्र, जो बिना किसी कारण के ही सेठ और सेठानी के और दूसरे नौकरों के बीच बार-बार झगड़े करवाता रहता है।

आया का मतलब है, सेठानी की भी सेठ।

आया का मतलब है, सेठानी के मातृ पद का प्रकट अपमान।

आया का मतलब है, एक ग्वाला, जिसको सेठ और सेठानी ने अपने बालकों की निगरानी के लिए रखा है।

आया का मतलब है, एक शिक्षक, जो 'चुप रहो, गड़बड़ मत करो, सेठ को कह दूंगा', कहकर बालकों को सयाना बनाने का काम करता है।

आया का मतलब है, एक ऐसा शिक्षा-शास्त्री, जो यह कहकर कि बालक बिलकुल ही जंगली बन गया था, बालक को सज़ा देकर सुधारने का दावा करता है।

आया का मतलब है, बालकों का 'बिलाव' अथवा 'बाघ'।

आया का मतलब है, एक ऐसी स्त्री, जो बालक को चिकोटी भरकर पहले रुलाती है, और फिर रौब के साथ बालक से पूछती है : 'भई, तुम क्यों रो रहे हो ?'

आया का मतलब है, बालकों को झटपट कपड़े पहनाकर, बूट-मोजे पहनाकर, धीरज के साथ बालकों को अपने सब काम खुद ही करने देने के बदले स्वयं कर देने वाला, और उनकी सारी बलाओं को टालने वाला एक वैधशास्त्री।

आया का मतलब है, बालकों के माता-पिताओं द्वारा घर के पैसे खर्च करके रखा हुआ एक ऐसा समाज-शास्त्री, जो बालकों को हवा खोरी के लिए ले जाने पर वहां अपने दल के बीच बैठ कर हलके ढंग की सामाजिक बातें करता है, और बालकों को उन बातों का लाभ देता है।

आया का मतलब है, बालकों का एक ऐसा वकील, जो उनको उनके माता-पिता से कुछ रियायतें दिलवाता है, माता-पिता से कुछ अधिकार दिला देता है, और इस शर्त के साथ काम करता है कि उसके द्वारा कही गई बात मानी जाएगी।

आया का मतलब है, घर में घुसा हुआ घूस।

जो इन सब बातों को जानते नहीं, वे आया से कुछ दूर और उसके पीछे खड़े रहकर सारी बातें जान-समझ लें। इससे उनको पता चला जाएगा कि आया नामक यह प्राणी कैसा प्राणी है।

: 101 :

माँ पीटती हैं

'किनको, किनको उनकी माँ पीटती हैं ?'

'हमको, हमको !' पचास हाथ एक साथ उठे।

'चम्पक, बोलो, तुमको तुम्हारी माँ क्यों पीटती हैं ?'

'इसलिए कि मैं कुर्सी पर चढ़कर कूदता और खेलता हूँ।'

'लीला, तुमको तुम्हारी माँ क्यों पीटती हैं ?'

'इसलिए कि मैं माँ की कंघी से अपने बाल सँवारती हूँ।'

'शिवजी, तुमको तुम्हारे पिताजी क्यों पीटते हैं ?'

'इसलिए पीटते हैं कि मैं पिताजी की क़लम से लिखा करता हूँ।'

'राधा, तुम्हारी पिटाई किसलिए होती है ?'

'इसलिए कि मैं माँ से कहती हूँ : 'माँ, मुझको झटपट खा लेना है।'

'किरीट, तुमको क्यों पीटा जाता है ?'

'इसलिए कि मैं ऊधम मचाता हूँ।'

'किस तरह का ऊधम मचाते हो ?'

'मुझको मालूम नहीं।'

'शैलेश ! तुम किसलिए पीटे जाते हो ?'

'इसलिए कि मैं माँ के साथ सिनेमा जाने के लिए रोता हूँ।'

'देवी बहन, तुम क्यों पीटी जाती हो ?'

'इसलिए कि हम आपस में झगड़ती रहती हैं।'

'किसलिए झगड़ती हैं ?'

'हमको पता नहीं !'

: 102 :

इन माँ-बापों से क्या कहा जाए ?

सब बालक हँसी-खुशी के साथ खेल रहे थे। हासम सुस्त होकर बैठे थे।

'हासम भाई ! उठो, उठो ! देखो, वे सब खेल रहे हैं। उनके साथ तुम भी खेलो !'

हासम ने आँख उठाकर मेरी तरफ देखा तक नहीं। वे वैसे ही गुमसुम बैठे रहे। मैंने उनको अपने हाथ से छुआ। उनका बदन गरम था। थर्मामीटर लगाकर देखा, तो बुखार 101 डिग्री था।

❀ ❀ ❀

चन्द्रा बहन रोती-रोती मेरे पास आईं।

'बहन, तुम क्यों रो रही हो ? तुमको क्या चाहिए ?'

चन्द्रा बहन बोली नहीं। रोने लगीं।

'चन्दुभाई, थर्मामीटर लगाकर देखो। कहीं इनको बुखार न हो।'

चन्दुभाई ने जाँचकर कहा : '102.5 डिग्री बुखार है !'

❀ ❀ ❀

विनोद रोते-रोते सो गए थे।

'विनोद भाई ! ज़रा उठो। आओ, मैं तुमको ये चित्र दिखाऊँ।'

मैं विनोद को हाथ लगाकर उठाने लगा, तो वे दुगुने ज़ोर से रोने लगे। जब मैंने उनको उठाकर अपनी गोद में लिया, तो उन्होंने चीख-चीखकर रोना शुरू कर दिया। बदन में बुख़ार तो नहीं था। कपड़े उतार कर देखा, तो जाँघ पर फोड़े के साथ सूजन थी।

❀ ❀ ❀

कहानी सुनते-सुनते राधा बहन अचानक ही रोने लगीं। चुप करने के लिए मैंने उनको अपनी गोद में बैठाया, तो मेरी गोद गीली हो गई। राधा बहन को पानी की तरह पतला दस्त हुआ था, और पेट में मरोड़े की तकलीफ थी।

❀ ❀ ❀

शान्ता बहन सामने खड़ी थीं। मैंने उनके सिर की तरफ देखा, तो मुझको सिर में जूँ दिखाई दी। एक-दो जूँ तो सिर में चल रही थीं। एक शिक्षिका बहन ने चार-पाँच जुएँ तो वहीं उनके सिर में से निकालीं। शान्ता बहन अपना सिर लगातार खुजलाती रहती थीं। वैसे, वे शरीर से दुबली-पतली और निस्तेज दिखाई पड़ती थीं।

हमारे बाल मन्दिर में ऐसे बालक भी आते हैं। ग़रीबों के ही नहीं, अमीरों के भी ऐसे ही बालक आते हैं। जब हम माँ-बाप का ध्यान इन बातों की तरफ खींचते हैं, तो कोई कहते हैं : 'अच्छा ! उसको बुखार था ? शायद आ गया होगा।' दूसरे कहते हैं : 'अरे, बुखार तो उसको कभी आता नहीं है। आया है, तो उतर जाएगा।' कोई कहते हैं : 'अभी गरमी का मौसम गया है। उसकी वजह से फोड़ा हुआ होगा। इस मौसम में बच्चों को ऐसे फोड़े अकसर होते रहते हैं।' कोई कहते हैं : 'भई, उसने कच्चे गेहूँ खा लिए थे, इसलिए उसको दस्त लगे थे। डॉक्टर ने दवा दी, तो दस्त बन्द हो गए।'

माताओ और पिताओ ! कहिए, ऐसी हालत में मुझको और आप सबको क्या करना चाहिए ?

: 103 :

बालक मन-ही-मन कहते हैं ... ...

देखिए न, हमारे ये बाबूजी तो बैठे-बैठे अख़बार ही पढ़ते रहते हैं, जबकि घर के सारे काम तो अम्मा ही करती हैं।

बाबूजी तो किसी को अपने कमरे में आने ही नहीं देते। लेकिन अम्मा के कमरे में तो हम सब बेधड़क जाते रहते हैं।

हम थोड़ी-सी भी आवाज करते हैं, तो बाबूजी हम को तुरन्त ही टोकते हैं और कहते हैं : 'चुप रहो ! हल्ला मत करो। भाग जाओ !'

लेकिन अम्मा की हाज़िरी में तो हल्ला-गुल्ला सब कुछ चलता रहता है। अम्मा कभी नहीं कहतीं कि भागो !

बाबूजी हम से रोज़ एक ही सवाल पूछते हैं : 'आज कक्षा में तुम्हारा नम्बर कौन-सा रहा ? तुम अपना सबक़ अच्छी तरह याद करके गए थे या नहीं ?'

पर अम्मा तो हम से न जाने कितनी बातें करती रहती हैं।

बाबूजी अपना गम्भीर चेहरा लेकर अकेले ही बैठे रहते हैं, और हमारे साथ बहुत ही कम बोलते हैं।

लेकिन अम्मा तो बातों की झड़ी लगा देती हैं। वे हमारे साथ हँसती हैं और हमको भी हँसाती रहती हैं। हमारे न बोलने पर भी वे तो हमसे बराबर बोलती ही रहती हैं।

हम अपने बाबूजी से बहुत डरते हैं। उनको दूर से देखकर ही हम सीधे और सयाने बनकर चुपचाप बैठ जाते हैं। लेकिन अम्मा से तो डरना ही क्या था? अम्मा की हाज़िरी में तो सब कुछ चलता है—धमा-चौकड़ी भी और धींगामस्ती भी!

: 104 :

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि—

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मैं ज़रूरत से ज्यादा गम्भीर था।

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मैं गन्दा था।

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मैं बहुत जल्दी-जल्दी बोलता था।

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मैं उसकी हाज़िरी में दूसरे किसी आदमी पर नाराज़ हो रहा था।

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मैंने उसको अचानक ही ऊँचा उठा लिया था।

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मैंने उसकी गरदन पकड़ कर उसको चूम लिया।

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मैंने ऊँची आवाज़ में उसको 'तू' कहकर बुलाया।

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मैं धमधम की आवाज के साथ चल रहा था।

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मैं उसको गुदगुदाने लगा था।

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मैंने उसको मेरी गोद में बैठने के लिए कहा था।

मैं बालक को जँचा नहीं, क्योंकि मेरे मुँह से बदबू आ रही थी।

: 105 :

रोते हैं, तो पागल कहलाते हैं

नौकर : 'सुनो, जो रोते हैं, लोग उनको पागल कहते हैं।'

बालक पहली ही बार बाल-मन्दिर में आया है। उसको वहाँ का वातावरण नया-नया सा लगता है। वह मन-ही-मन अपने घर को, अपनी माँ को और अपने भाई-बहनों को याद करके परेशान होता है। नौकर बालक से कहता है : 'सुनो, जो बालक रोता है, लोग उसको पागल कहते हैं।'

बाल-मन्दिर के शिक्षक नौकर से पूछते हैं : 'क्यों भाई, आप रोएँगे, तो लोग आपको पागल कहेंगे या नहीं?'

नौकर कहता है : 'नहीं, मैं पागल नहीं कहा जाऊँगा।'

शिक्षक : 'तो फिर यह बालक पागल क्यों कहा जाएगा?'

नौकर : 'जी, बालक को तो पागल कहा ही जाएगा।'

शिक्षक : 'क्या आप मानते हैं कि रोने वाला बालक पागल बन जाता है?'

नौकर : 'जी नहीं, वह पागल तो नहीं बनता, लेकिन जब वह रोने लगता है, तो उसको कहना चाहिए कि रोने पर लोग उसको पागल कहेंगे।'

शिक्षक : 'भला, बालक को ऐसी बात क्यों कहनी चाहिए?'

नौकर : 'इसलिए कि ऐसा कहने से बालक रोना बन्द कर देता है।'

शिक्षक : 'लेकिन क्या इसके कारण बालक यह नहीं सोचेगा कि अगर वह रोएगा, तो पागल कहलाएगा। क्या बालक के मन में ऐसी बात बैठा देना ग़लत नहीं होगा?'

नौकर : 'ग़लत या सही, जो भी हो, हमारा तो काम है कि हम बालकों को सँभाले रहें। ये बालक तो ऐसे हैं कि समय, असमय, जब इनका मन होता है, ये रोना शुरू कर देते हैं। अगर हम इनको रोने देते हैं, तो आप हम पर नाराज़ होते हैं, और सेठ-सेठानी भी नाराज़ होते हैं। इसीलिए इनको ऐसा कुछ तो कहना ही पड़ता है।'

शिक्षक : 'लेकिन अगर सेठ आपको ऐसा कहते सुन लें, तो वे आपको डाँटें-डपटेंगे या नहीं ?'

नौकर : 'जी नहीं। सेठ और सेठानी दोनों तो बालकों से एक नहीं, एक सौ एक बार कहते रहते हैं कि अगर वे रोएँगे, तो लोग उनको पागल कहेंगे !'

शिक्षक बालक से पूछते हैं : 'कहो, भैया ! तुम पागल हो या सयाने हो ?'

बालक : 'मैं तो पागल हूँ।'

शिक्षक : 'तुम पागल क्यों हो ?'

बालक : 'इसलिए कि मैं पागल हूँ।'

शिक्षक : 'लेकिन तुम सयाने न होकर पागल क्यों हो ?'

बालक : 'इसलिए कि मैं रोता हूँ।'

शिक्षक : 'भला, रोने से कोई पागल कैसे बन जाता है ?'

बालक : 'अम्माजी कहती हैं, पिताजी कहते हैं, ये नौकर-भाई भी कहते हैं कि हम रोते हैं, तो पागल कहे जाते हैं। इसलिए मैं पागल हूँ।'

शिक्षक : 'लेकिन तुम पागल हो या सयाने हो ?'

बालक : 'मैं तो पागल हूँ।'

शिक्षक : 'अच्छा सुनो ! अगर मैं तुमको पागल न कहकर सयाना कहूँ, तो तुमको कैसा लगेगा ?'

बालक : 'लेकिन मैं रोता तो हूँ। फिर मैं सयाना कैसा ?'

शिक्षक : 'तुम रोते किसलिए हो ?'

बालक : 'मैं घर जाना चाहता हूँ।'

शिक्षक : 'जो घर जाना चाहे, वह पागल क्यों कहलाए ?'

बालक : 'सब कोई कहते हैं कि जो रोता है, लोग उसको पागल कहते हैं !'

: 106 :

आज पाठशाला नहीं जाना है

(1)

बालक : 'आज मैं पाठशाला नहीं जाऊँगा।'

पिता : 'कोई बात नहीं। कल चले जाना।'

❀ ❀ ❀

बालक : 'मुझ को यह कपड़ा अच्छा नहीं लगता। क्या मैं दूसरा पहन लूँ ?'

पिता : 'तो दूसरा पहन लो। जो तुमको अच्छा लगे। वही पहन लो।'

❀ ❀ ❀

बालक : 'अब मुझको यह नहीं भाता। छोड़ना पड़ेगा।'

पिता : 'ठीक है। जबरदस्ती मत खाओ।'

❀ ❀ ❀

बालक : 'अब मैं इस कमरे में नहीं पढ़ूँगा। मुझ को यह अच्छा नहीं लगता।'

पिता : 'ठीक है, तो तुम उस दूसरे कमरे में बैठकर पढ़ो।'

(2)

बालक : 'आज मैं पाठशाला नहीं जाऊँगा।'

पिता : 'नहीं क्यों जाओगे ? जाना ही होगा।'

❀ ❀ ❀

बालक : 'यह कपड़ा तो मुझ को अच्छा नहीं लगता। दूसरा पहन लूँ ?'

पिता : 'अच्छा क्यों नहीं लगता ? तुम इसी को पहनो।'

❀ ❀ ❀

बालक : 'अब यह मुझको नहीं भाता। छोड़ना पड़ेगा।'

पिता : 'यह तो तुमको खाना ही होगा । भला, छोड़ा कैसे जा सकता है ?

❀ ❀ ❀

बालक : 'मैं इस कमरे में नहीं पढ़ूँगा । मुझ को यह अच्छा नहीं लगता ।'

पिता : 'अच्छा क्यों नहीं लगता ? पहले ही सोच लिया होता । अब तो इसी में बैठना और पढ़ना होगा ।'

: 107 :

यदि आपका बालक आपसे कहे–

मान लीजिए कि आपका बालक आपसे कहे कि पिताजी, मैं यहाँ लिख रहा हूँ । जोर-जोर से बातें करके आप मेरे लिखने में रुकावट मत डालिए ।

मान लीजिए कि आपका बालक आपसे कहे कि आज तो मेरे मित्र मुझ से मिलने आए हैं, इसलिए मैं भोजन देर से करूँगा ।

मान लीजिए कि आपका बालक आपसे कहे कि आप बड़े–बूढ़े लोग अपने काम नियमित रूप से नहीं करते हैं, सो ठीक नहीं हैं ।

मान लीजिए कि आपका बालक आपसे कहे कि आज विद्यालय जाने में मेरा मन अलसा रहा है, इसलिए मेरे शिक्षक के नाम आप चिट्ठी भेज दीजिए कि मैं आज विद्यालय नहीं पहुँचूँगा ।

मान लीजिए कि आपका बालक आपसे कहे यह अच्छा नहीं कि आपके कपड़े गन्दे रहें, और आपके जूते धूल-भरे रहें । हमको यह अच्छा नहीं लगता । आपके समान बड़ों को यह शोभा नहीं देता ।

मान लीजिए कि आपका बालक आपसे कहे कि माताजी, आप इस तरह झूठ मत बोलिए । झूठ बोलने से पाप लगता है । कल से आप सच ही बोलिए ।

मान लीजिए कि आपका बालक आपसे कहे कि पैसे इस तरह बरबाद

करते रहने के लिए नहीं हैं । निकम्मी पुस्तकें, कपड़े और ऐसी दूसरी चीजें खरीदते रहना उचित नहीं ।

मान लीजिए कि आपका बालक आपसे कहे कि आपको हमारे साथ सही बरताव करना आता नहीं है, इसलिए बालकों के साथ कैसा बरताव करना चाहिए, इसको समझने के लिए आप अमुक पुस्तक पढ़ लीजिए ।

मान लीजिए कि आपका बालक आपसे कहे कि पिताजी और माताजी ! यदि आप दोनों आपस में लड़ेंगे, तो हम आपको घर में नहीं आने देंगे, और आपका भोजन भी बन्द कर देंगे ।

मान लीजिए कि आपका बालक आपसे कहे कि पिताजी आप अपना काम धन्धा अच्छी तरह करना जानते नहीं हैं, इसलिए आपको काम-धन्धा सिखाने वाला कोई शिक्षक हमें लगाना होगा ।

: 108 :

कभी परदे की आड़ से देखेंगे ?

टयूशन के लिए रखे गए शिक्षक आपके बालक को पढ़ाते हैं, या उसको लिखने का कोई काम सौंपकर खुद अखबार पढ़ते रहते हैं ?

क्या खानगी शिक्षक बालकों से घर की गुप्त बातें जानकर सेठ और सेठानी को खुश रखने के लिए उन बातों का उपयोग करने की तरकीबें सोचने में लगा रहता है ?

जब शिक्षक अकेला होता है, तो क्या वह बालकों को यह कहकर धमकाता है कि सेठ से कह कर वह उनको पिटवाएगा, और इस तरह उनसे सबक़ तैयार करवाकर वह अपनी मेहनत कम करता है ?

क्या शिक्षक बालकों के साथ दोस्ती बढ़ाने के प्रयत्न में इसलिए रहता है कि जिससे अपना वेतन बढ़वाने में वह बालकों की मदद ले सके ?

क्या शिक्षक ऊधमी बालकों की खुशामद करता है, क्या वह उनको पढ़ा नहीं पाता है, और फिर भी पढ़ाने का दिखावा करता रहता है ?

शिक्षक जो वेतन पाता है, उसकी तुलना में क्या वह सच्चे दिल से बालकों को पढ़ाने का परिश्रम करता है ?

: 109 :

चम्पा का निश्चय

चम्पा पाँच साल की है। चारों तरफ हवा ऐसी बनी है कि दीवाली के दिनों में पटाखे न छोड़े जाएँ। पास-पड़ोस के कोई बालक पटाखे छोड़ नहीं रहे हैं। चम्पा के गुरुजनों में से कोई कुछ पटाखे घर में लाए हैं।

चम्पा के साथ बात करते-करते चर्चा शुरू हुई : 'देखो, चम्पा ! तुम जानती हो न कि इस साल हमको पटाखे नहीं छोड़ने हैं। इस बार गाँव-गाँव के बच्चों ने निश्चय किया है : 'हमको पटाखे नहीं छोड़ने हैं।' अगर पटाखे छोड़ते हैं, तो उनकी फटाफट आवाज आती है, हवा में धुँआ फैल जाता है, और पैसा बरबाद होता है। पटाखों के बदले हम कोई मीठी चीज क्यों न खाएँ ?'

सुनकर चम्पा मेरा मुँह ताकती रही। वह गहरे सोच में पड़ गई। उसने पूछा : 'क्या सचमुच सब बच्चों ने यही निश्चय किया है ? पटाखे छोड़ने ही नहीं हैं ?'

मैंने कहा : 'हाँ, बच्चों ने तो यही निश्चय किया है।'

चम्पा बोली : 'लेकिन क्या वे झूठ तो नहीं बोल रहे हैं ?'

मैंने पूछा : 'तुम यह क्या पूछ रही हो,... चम्पा ?'

चम्पा ने कहा : 'बहुतेरे बच्चे झूठ बोलते हैं।'

मैं बोला : 'लेकिन इन बच्चों ने तो इसका पक्का निश्चय ही कर लिया है।'

चम्पा ने कहा : 'अगर ऐसा है, तो मैं भी अपने पटाखे नहीं छोड़ूंगी। भला, हम अकेले कैसे छोड़ सकते हैं ?'

कुछ देर तक सोचने के बाद चम्पा फिर बोली : 'लेकिन आगे किसी दिन छोड़े जा सकते हैं या नहीं ?'

मैंने देखा कि चम्पा की इच्छा तो पटाखे छोड़ने की है, लेकिन इसी के साथ जब दूसरे बच्चे पटाखे नहीं छोड़ रहे हैं, तो उसको भी पटाखे छोड़ना

अच्छा नहीं लग रहा है। बाल-स्वभाव के ऐसे सहज और सरल दर्शन के बाद इस विषय में मेरी रुचि बढ़ी।

मैंने बीच का रास्ता निकालते हुए कहा : 'हाँ-हाँ, दूसरे मौकों पर पटाखे छोड़े जा सकते हैं। जैसे, महात्मा गांधीजी के जेल से छूटने पर तुम पटाखे छोड़ सकती हो। उस समय तो खुशी-खुशी, नाचते और कूदते हुए तुम फटाफट पटाखे छोड़ सकोगी।'

सुनकर चम्पा का मन बहुत सन्तुष्ट हो गया। उसने कहा : 'तब तो मैं अपने पटाखे आलमारी में रख देती हूँ। जब गाँधीजी छूटेंगे, तभी मैं अपने पटाखे भी छोड़ूँगी।'

मैंने कहा : 'बहुत अच्छा।'

चम्पा ने अपना निश्चय कर लिया। उसने अपनी माँ को और बुआ को भी अपने निश्चय की जानकारी देते हुए कहा : 'गाँधीजी के छूटने पर मैं अपने पटाखे छोड़ूँगी।'

बालकों के अध्ययन में रुचि रखने वालों के लिए यह अनुभव बहुत उपयोगी बनेगा।

: 110 :

कभी नहीं

ज़रूरत पड़ने पर आप अपने नौकर को भले ही डाँटिए और डपटिए, पर अपने बालकों की हाज़िरी में कभी नहीं।

कभी पति-पत्नी के रूप में आप भले ही आपस में लड़-झगड़ लिया करें पर अपने बालकों की हाज़िरी में कभी नहीं।

पति-पत्नी को अपने रोज-रोज के व्यवहार में तरह-तरह की चिन्ताओं की चर्चा करनी होती है, पर अपने बालकों की हाज़िरी में कभी नहीं।

आप ग़रीब हैं, तो अपनी ग़रीबी की बात आप अपने मन ही में रखिए, या अपने मित्र से कहिए, पर बालकों की हाज़िरी में उसकी चर्चा कभी मत कीजिए।

कभी भूले-चूके आप दूसरों की टीका या आलोचना भले ही कर लें, पर बालकों की हाज़िरी में तो कभी नहीं।

आप भले ही आपस में अपने निजी जीवन की बातें करते रहिए, पर बालकों की हाज़िरी में तो कभी नहीं।

कभी मौज में आकर आप सारी दुनिया की गपशप भले ही करते रहिए, पर बालकों की हाज़िरी में तो कभी नहीं।

दुर्भाग्य से आप कभी कुटिल कपट नीति की कुछ अटपटी बातें चाहे कर लें, पर बालकों की हाज़िरी में तो कभी नहीं।

वैसे, अफीम और शराब कभी पीनी ही नहीं चाहिए, पर बालकों की हाज़िरी में तो कभी नहीं।

हमारी अपनी कोई निजी कुटेव होनी ही नहीं चाहिए, पर बालकों की हाज़िरी में तो कभी नहीं।

सबका अपना निजी और खानगी जीवन होता ही है, पर बालकों की हाज़िरी में कभी नहीं।

आप अपने घर में बालकों के ब्याह आदि की बातें भले ही करते रहिए, पर बालकों की हाज़िरी में तो कभी नहीं।

: 111 :

माँ-बाप बोलते हैं

'हे राम ! कहीं इसको कुछ हो न जाए।'
'अरे, कहीं यह ज़ीना गिर न पड़े !'
'अरे, कहीं यह अगनबोट डूब न जाए !'
'अरे, कहीं रेलगाड़ियाँ टकरा न जाएँ !'
'अरे, कहीं कुत्ता इसको काट न ले !'
'अरे, कहीं बिल्ली इसको नोच न ले !'
'हे राम ! कहीं वहाँ सांप न निकल आए !'
'अरे राम ! उस रास्ते कोई लुटेरा इनको लूट न ले !'

'अरे, कहीं यह दीवार गिर न पड़े !'
'अरे, कहीं यह गरम पानी से जल न जाए !'

माता-पिता बार-बार ऐसी डराने वाली बातें कहते रहते हैं। सालों तक उनके आसपास ऐसी कोई घटना घटी नहीं, घटती भी नहीं, फिर भी ये 'हाय राम !' और 'अरे राम !' की आवाज़ें तो उठती ही रहती हैं। इनके कारण छोटे बच्चे सहज ही डरने लगते हैं। वे सोचते रहते हैं : 'हाय राम ! कहीं मैं गिर न पड़ूँ। कहीं मैं जल न जाऊँ। कहीं मैं मर न जाऊँ !' ऐसी कोई घटना कहीं घटती नहीं है. फिर भी उसके डर से डरते ही रहना पड़ता है। घटना घटने के बाद वह इतनी डरावनी लगती नहीं, और न वह इतनी डरावनी होती ही है। लेकिन सबसे पहला डर तो अपना ही होता है। सबसे भयंकर दुःख तो डर लगने से पहले का होता है।

:112 :

मेरा प्रभाव

जब मैं मन-ही-मन गुस्से से उबल रहा होता था, तब मेरे बच्चे दूसरे बच्चों पर और मुझ पर गुस्सा होते रहते थे।

जब मैं मन-ही-मन बुरी तरह ईर्ष्या से जल रहा होता था, तब मेरे बच्चे दूसरे बच्चों के खूबसूरत चेहरों को और अच्छे कपड़ों को देखकर खुश नहीं होते थे, बल्कि वे अपने मन में एक तरह की बेचैनी महसूस करते रहते थे।

जब मैं मन-ही-मन दूसरों का बुरा करने की बात सोचता होता था, तब मेरे बच्चे दूसरे बच्चों को मारते-पीटते थे, और उनका काम बिगाड़ते रहते थे।

जब मैं मन-ही-मन बहुत ही अनुदार, संकुचित और स्वार्थी होता था, तब मेरे बच्चे अपनी कोई भी चीज़ किसी को देने से इनकार करते थे। उलटे, वे दूसरों की कुछ चीज़ें उठा लाते थे।

जब मैं मन-ही-मन लापरवाह और गुस्ताख़ होता था, तब मेरे बच्चे किसी के बुलाने पर, उसकी बात का जवाब तक नहीं देते थे, वे अपने ही मिजाज में मस्त रहते थे, और खुद परेशान रहा करते थे।

जब मैं मन-ही-मन दूसरों को धिक्कारता होता था, तब मेरे बच्चे हर किसी के दोष देखने में लगे रहते थे और हर किसी की बुराई करते रहते थे।

जब मैं मन-ही-मन आलसी और प्रमादी होता था, तब मेरे बच्चे कह-कह कर थक जाने पर भी काम करने के लिए खड़े ही नहीं होते थे।

: 113 :

दो घरों में

(1)

बालक नए-नए खेल-खेल रहे थे। वे हिल-मिलकर हँस रहे थे।

वे एक-दूसरे को खेला रहे थे और खुद बहुत ही खुश थे।

वे एक-दूसरे की मदद करते थे और मदद लेते थे।

वे तरह-तरह की नई-नई रचनाएँ रचते थे और उनको देख देखकर मन-ही-मन खुश होते थे।

वे आपस में एक दूसरे का सम्मान करते थे, और प्रेम-प्रीति के साथ रहते थे।

माँ घर के अपने काम-काज में से थोड़ा समय निकालकर बार-बार, दूर ही से बच्चों के कामों को देखती रहती थीं। वे बच्चों की मीठी हँसी की गूँज के आनन्द में नहाती रहती थीं। वे बच्चों के सुन्दर और सुललित गुँजन से अपने कानों को तृप्त करती रहती थीं। वे उनकी तरफ बार-बार देख कर लौट जाती थीं, और फिर उनको देखने के लिए वापस आती रहती थीं।

बालकों के और उनकी माता के वे क्षण धन्य थे, भव्य थे।

(2)

बालकों को कुछ सूझ नहीं रहा था कि वे क्या खेलें। वे आपस में लड़-झगड़ रहे थे, और रो रहे थे। वे एक-दूसरे को धक्के दे रहे थे, और एक-दूसरे की चीजें छीन लिया करते थे।

उनमें से कभी कोई बच्चा नया काम करता था, तो दूसरा बच्चा उसको बिगाड़ देता था, और फिर वे आपस में झगड़ने लगते थे।

वे एक-दूसरे पर गुर्राया करते थे, एक-दूसरे को आँखें दिखाया करते थे।

घर का काम-काज करते-करते माँ गुस्से-भरी आवाज़ में चिल्लाकर कहती थीं : 'अरे मेरे भागवानो! तुम आपस में लड़ो मत। मैं उधर आऊँगी, तो तुमको धुनककर रख दूँगी।' माँ मन-ही-मन कुढ़ती रहती थीं, बार-बार अपना मुँह बिगाड़ती रहतीं और घर के बरतन-भाँडों को पछाड़ती रहती थीं। वे हर किसी पर नाराज़ होती रहती थीं। जब बालक बहुत झगड़ पड़ते, तो वे उनके पास पहुँचती थीं, और जो भी सामने पड़ जाता उसको दो-चार धप्पे लगाकर वापस चली जाती थीं।

बालकों के और माता के वे क्षण अधन्य थे, दीन थे।

: 114 :

जब मैं कहूँ, तब करना

(1)

माँ साग छौंक रही थीं।

इन्दु की इच्छा हुई कि वह साग छौंके। इन्दु की उमर साग छौंकने लायक हो चुकी थी।

इन्दु ने माँ से पूछा : 'माँ! मैं साग छौंकूँ?'

माँ ने कहा : 'जब मैं कहूँ, तब तुम साग छौंकना। अभी तुम साग छौंकना जानती नहीं हो।'

इन्दु निराश होकर चली गई।

(2)

माँ को बुखार आया था।

माँ ने सोचा, आज इन्दु से कहूँ कि वह साग छौंक दे।

माँ ने इन्दु को पुकारा और कहा : 'बेटी इन्दु, क्या तुम आज साग छौंक दोगी?'

इन्दु बोली : 'माँ! मुझको तो साग छौंकना नहीं आता।'

क्यों न दिखाएँ ?

बालक को पक्षियों की सुन्दर बातें कहने के बदले हम उसको सुन्दर-सुन्दर पक्षी क्यों न दिखाएँ ?

श्याम पाट पर बालक को इंजन की रचना समझाने के बदले हम उसको इंजन के पास ले जाकर वहाँ इंजन की सारी रचना क्यों न समझाएँ ?

बालक को धरती के पेट में पड़े अनेकानेक खनिज द्रव्यों की रोचक कथाएँ सुनाने के बदले, हम उसको खनिज द्रव्यों से भरी-पूरी धरती ही खोदकर क्यों न दिखाएँ ?

घर में लेटे-लेटे बालक को आसमान के तारों की बातें कहने के बदले हम उसको आँगन में या छत पर ले जाकर तारे क्यों न दिखाएँ ?

बालक किसी चीज़ से कभी डरे नहीं, डरने लायक कोई चीज़ होती ही नहीं है, ऐसा कहने के बदले हम रात के अँधेरे में बालक के साथ घूमने क्यों न निकलें ? उसको डर वाली जगहों में ले जाकर निर्भयता का परिचय क्यों न कराएँ ?

अपनी बड़ी उमर में बालक को बड़े-बड़े काम करने चाहिए, उसको बहादुर और होशियार बनना चाहिए, अपने शब्दों द्वारा बालक को ऐसी प्रेरणा देने के बदले, हम उसको बहादुरी और होशियारी के छोटे-छोटे काम करना क्यों न सिखाएँ ?

बालक को देश के लाखों-करोड़ों ग़रीबों की बातें सुनाने के बदले हम उसको ग़रीबों के झोंपड़े क्यों न दिखाएँ ?

अपने नौकरों को मार-पीट कर उनसे काम करवाने वाले सेठों की और कारखानों में काम करने वाले मज़दूरों की बातें बालक को सुनाने के बदले हम उसको सेठों, मज़दूरों और कारखानों के बीच क्यों न ले जाएँ ?

क्या ऐसा करने पर बालक का अधिक अच्छा विकास नहीं होगा ?

किसका विकास अधिक होता है ?

पूनम अपने अधनंगे बदन से सूरज की धूप में घूम भटक-कर अपनी ठण्ड भगाता है।

उषाकान्त अपने शरीर को गरम कपड़ों से ढक कर सिगड़ी के पास बैठा है।

पूनम घर के पास आए हुए कुत्ते को हाथ में पत्थर लेकर तुरन्त ही भगा देता है।

उषाकान्त कुत्ते को देखकर रोता-रोता घर की ओर भागता है, और अपनी माँ को पुकारता है।

पूनम अपने हाथों की अंजलि बनाकर ऊपर से डाले जाने वाले पानी को गट-गट पी लेता है।

उषाकान्त पानी पीते-पीते गिलास गिरा देता है, और अपने कपड़े गीले कर लेता है।

पूनम हाथ में डण्डा लेकर घर की गाय और भैंस को पानी पिलाने ले जाता है।

उषाकान्त के सामने जब उसके ही घर की भैंस या गाय आती है, तो वह अपनी माँ को पुकारता हुआ घर में भाग जाता है।

पूनम सुबह जुवार-बाजरे की आधी रोटी और छाछ का नाश्ता करता है, और दोपहर से पहले उसको फिर भूख लगती है।

उषाकान्त को दूध भाता नहीं है, और सुबह चाय का एक प्याला ले लेने के बाद दोपहर तक उसको भूख लगती ही नहीं है।

पूनम दौड़-दौड़ कर खो-खो, कबड्डी खेलता है, और कभी पकड़ा ही नहीं जाता है।

उषाकान्त खेलने से ही इनकार करता है। वह कहता है : 'मुझको खेलना पसन्द ही नहीं है। खेलता हूँ, तो मैं गिर-गिर पड़ता हूँ।'

पूनम यह खोजने निकलता है कि मकड़ी अपने जाले कहाँ-कहाँ बनाती है। वह मैना के अण्डे खोज लेता है। वह आम के पेड़ पर चढ़कर आम तोड़ना जानता है। भैंस की पीठ पर बैठकर ढोरों को पानी पिलाने ले जाता है। रात के अँधरे में वह तारों के प्रकाश में चल लेता है।

उषाकान्त घर में बैठा-बैठा मकड़ी की और मैना के अण्डों की बातें पढ़ता है। आम के और तारों के पाठों की नक़ल वह अच्छी तरह कर लेता है। उसके अक्षर अच्छे हैं।

: 117 :

यों नहीं, यों

(1)

सुनो, वहाँ जाना मत। उधर अँधेरा है।

सुनो, उस रास्ते मत जाओ। वहाँ काँटे बिखरे हैं।

सुनो, वहाँ से भागो, नहीं तो कुत्ता काट लेगा।

सुनो, यहाँ से भागो, यहाँ यह गड़बड़ हो रही है।

दूर हटो, यह कुर्सी तुम्हारे लिए नहीं है। तुम इस पर बैठना नहीं जानते।

तुम उसको उठाओ ही मत। उससे तुम अपना हाथ काट लोगे। वह छुरी तो तुम एक तरफ़ ही रख दो।

भई, तुम एक तरफ हो जाओ। तुम उसको गिरा दोगे। सुनो, तुम उसको हाथ मत लगाना।

(2)

वहाँ अँधेरा है। बत्ती लेकर जाओ।

देखो, नीचे की तरफ देखते हुए चलो। उधर काँटे हैं।

सुनो, तुम वह पत्थर उठाकर खड़े रहो, जिससे कुत्ता पास न आ सके।

देखो, यहाँ अपना काम तुम इस तरह चुपचाप करो।

देखो, तुम इस कुर्सी पर इस तरह बैठो। इस पर इसी तरह बैठा जाता है।

देखो, इस छुरी को तुम इस तरह पकड़ो, और रस्सी काटनी हो, तो इस तरह काट लो।

देखो, इधर आओ। इसको इस तरह लो। मैं पास ही हूँ। इसको इस रीति से तोड़ लो।

: 118 :

पिता के बारे में

मीरा और विनोद चबूतरे पर बैठकर बात कर रहे थे: 'पिताजी को तो कुछ भी नहीं आता। झाड़ू लगाना, कपड़े धोना, बरतन माँजना, रसोई बनाना, सीना, अचार डालना, जाले साफ करना, अनाज साफ करना, साग सँवारना, उनको इनमें से कुछ भी तो नहीं आता।'

'पिताजी तो बस, बैठे-बैठे अखबार और बड़ी-बड़ी किताबें ही पढ़ते रहते हैं। जब किशोर काका और नन्दलाल आते हैं, तो उनके साथ बैठकर वे घण्टों निरी गपशप ही करते रहते हैं। वे बस, कुर्सी पर बैठना और बातें बघारना ही जानते हैं। हम ज़रा भी ज़ोर से बोलते हैं, तो तुरन्त कहते हैं: 'सुनो, यहाँ गड़बड़ मत करो!' कभी हम उनके कमरे में जाते हैं, तो 'बच्चो! भाग जाओ! यहां क्यों आए?' कहना और डाँटना जानते हैं। हमको विद्यालय न जाना हो, तो ज़बरदस्ती भेजना और विद्यालय से घर आने पर फ़ौरन ही सबक़ याद करने के लिए बैठाना, वे जानते हैं। इसके अलावा, बार-बार पानी लाओ, चाय लाओ, यह लाओ और वह लाओ, कह-कहकर चीज़ें मँगाते रहना ही जानते हैं। और अगर थोड़ी भी देर हो जाती है, तो माँ पर और हम पर नाराज़ होना जानते हैं। इन बातों के अलावा पिताजी को और कुछ भी नहीं आता। शायद इसीलिए मां तो उनसे कभी कहती ही नहीं हैं कि वे कुछ करें। माँ अकेली ही सब कुछ करती रहती हैं।'

: 119 :

माँ! मैं चौका साफ करवा दूँ?

'मां! चौका साफ़ करने में मैं तुम्हारी मदद करूँ? तुम पानी डालो, मैं साफ करता जाऊँ।'

'कम्बख्त, तुम रहने दो। क्या तुम लड़की हो ? चौके की सफाई तो लड़कियाँ करती हैं।'

*　　　　*　　　　*

'मां ! मैं यहाँ झाड़ू लगा दूं ?'

'अरे ओ अभागे ! अब तुम झाड़ू लगाओगे ? भीमा को क्या हम मुफ्त की तनख्वाह दे रहे हैं ? जाओ, तुम झाड़ूवाले बन जाओ, झाड़ूवाले !

'माँ ! ज़रा देखो। अपना यह रूमाल मैंने खुद ही धोया है।'

'दूर हटो, दूर ! तुमने तो अपना सारा कुरता भिगो लिया है, और पैर कीचड़ में गन्दे कर लिए हैं। आखिर मैं कितने कपड़े धोती रहूँ ?'

*　　　　*　　　　*

'माँ ! जमुना काकी के घर झूला बँधा है। मैं झूलने जाऊँ ?'

'वहाँ क्यों जा रहे हो ? हाथ-पैर टूटेंगे तो मुझसे तुम्हारी चाकरी नहीं होगी। वहाँ मत जाओ।'

*　　　　*　　　　*

'माँ ! अपने और बहन के ये सारे कपड़े मैं समेट लूं ?'

'तुम्हारे पास और कोई काम नहीं है ? कपड़े पड़े रहने दो। दूर हटो।'

*　　　　*　　　　*

'माँ ! देखो, मैं काँच के ये कितने अच्छे, छोटे-छोटे, और लाल-पीले टुकड़े लाया हूं। ये उधर पारेख भाई के अहाते के पास पड़े थे।

'सुनो, तुम इनको उस गड्ढे में डाल आओ। घर में लाओगे और किसी के पैर में कोई काँच लग जाएगा तो छह महीनों तक खटिया पर पड़े रहना होगा। इन काँचों में देखना ही क्या है ?'

*　　　　*　　　　*

'माँ ! इस सूई में यह धागा पिरो दीजिए।'

'अरे, यह सूई-धागा तुम कहाँ से ले आए ? तुम्हारे पास दूसरा कोई काम-धन्धा है या नहीं ? सूई-धागा जहाँ का तहाँ रख दो।'

*　　　　*　　　　*

'माँ ! अपने घर के पिछवाड़े छाँव है ? क्या मैं वहाँ विजया के साथ रोटी-रोटी का खेल खेलने जाऊँ ?'

'हाँ, अब और कोई काम न बचा हो, तो यही करो ! भई, मैं नहीं चाहती कि तुम उस विजया के साथ खेलो। मैं विजया की माँ का मुकाबला नहीं कर सकती। इस खेल ही खेल में तो विजया ताड़ की तरह बढ़ गई है।'

'माँ ! विजया के साथ मेरा तो कभी कोई झगड़ा होता ही नहीं है। हम तो आपस में मित्र हैं।'

'तुम यहाँ से चले जाओ ! मुझको तुम्हारी यह मित्रता पसन्द नहीं है।'

*　　　　*　　　　*

'माँ ! पिताजी कह गए हैं कि मैं उनकी यह दवात साफ कर दूं। यह काम मैं कर लूं ?'

'अब और कुछ न बचा हो, तो यही करो ! मैं नहीं चाहती कि तुम्हारे हाथ और तुम्हारा मुंह काला हो। तुम्हारे पिताजी को और कोई काम नहीं सूझता, तो वे ऐसे काम सुझाते रहते हैं !'

*　　　　*　　　　*

'तो माँ ! मैं यह लट्टू घुमाऊँ ?'

'भले आदमी, क्या इस दोपहरी में कोई लट्टू घुमाता है ? तुम समय का भी तो कुछ खयाल रखा करो। अच्छा तो यह हो कि तुम कोई काम करो। बार-बार मुझ से क्यों पूछते हो कि क्या करूँ ?'

'आखिर मैं करूँ क्या ?'

'इसमें पूछना क्या था ? तुम्हारी उमर के लड़के क्या करते हैं ?'

'लेकिन तुम तो मुझको कोई काम करने ही नहीं दे रही हो। तुम तो हर काम के लिए इनकार ही करती रहती हो।'

'भई, न करने लायक काम मैं तुमको कैसे करने दूं ?'

'तो बताओ कि करने लायक काम कौन-सा है ?'

'देखो, तुम मेरा खून मत पीयो। तुम्हारे काका के आने पर मैं उनसे कहूँगी। वे तुमको काम देंगे।

: 120 :

अरे, यह तो पेट में मरोड़े की तकलीफ़ थी

'बात क्या है? आज यह रमा क्यों रो रही है?'

'पता नहीं, आज शाम से ही रोना शुरू किया है, तो बराबर रोती ही जा रही है। रुक-रुक कर चीखने लगती है।'

'भला, इसका कारण क्या है?'

'कारण क्या बताऊँ? मेरे नसीब!'

'तुम इतनी घबराती क्यों हो? बच्चे तो रोते ही रहते हैं।'

'आपकी दृष्टि से तो बात ठीक है। पर आपके पास माँ का वह मन कहाँ है, जो बच्चे के रोने पर आकुल-व्याकुल हो उठता है? बस, आपने तो पूछ लिया: 'क्यों रो रही है?'

'शायद भूख लगी हो।'

'भूख की तो कोई बात है नहीं। कई बार दूध पिला चुकी हूँ, लेकिन थोड़ा दूध पीती है, और फिर पीना छोड़ देती है। अगर भूखी होती, तो ऐसा क्यों करती?'

'इसको कुछ हुआ लगता है। शायद पेट फूला हो! लाओ, देखूँ, पेट। डब-डब तो नहीं न बोलता?'

'भई, पेट तो फूला नहीं है। पेट तो रूई की तरह मुलायम है।'

'ज़रा मुझको दो। मैं इसको खेलाऊँ। थोड़ी देर के लिए बाहर ले जाऊँ।'

छगन भाई रमा को अपनी गोद में ले लेते हैं, और बाहर गली में ले जाते हैं। रमा का रोना थोड़ा रुकता है, और बाद में वह फिर चीख-चीख कर रोने लगती है।

गली की तरफ से जमुना दादी आईं। छगन भाई ने कहा: 'दादीजी! आप ज़रा इसको देखिए। यह रमा बड़ी देर से रो रही है। इसको क्या हो गया है?'

'ज़रा इसका पेट तो दिखाओ। लगता है, इसके पेट में मरोड़े आ रहे हैं। ज़रूर इसकी माँ ने कुछ खाया होगा। क्या कल सेम खाई थी?'

'हाँ, कल जाति की पंगत में सेम की सब्ज़ी तो बनी थी।'

'अच्छा तो बात ऐसी है! 'सूवे' के कुछ दाने काले नमक के साथ चबाकर इसके मुँह में दो बूँदें डाल दो। इसका रोना बन्द हो जाएगा और यह सो जाएगी।'

रमा की माँ ने वही किया, जो दादीजी ने कहा था। रमा ने रोना बन्द कर दिया। रमा की माँ बोलीं: 'लो, यह तो इसके पेट में मरोड़े आ रहे थे। भला, मैं क्या जानूँ कि सेम की थोड़ी सब्ज़ी खा लेने से बच्चे के पेट में मरोड़े आने लगते हैं?'

: 121 :

चने का आटा

'चम्पा काकी! चने का थोड़ा आटा दीजिए। मेरी माँ ने मँगाया है।'

'बेटी, चने का आटा तो कल ही खतम हो गया था। पिसवाने को दिया है। अभी आया नहीं है।'

'लेकिन काकी, कल तो मैंने आपकी पतीली में देखा था।'

'भला, कल का आटा आज तक कैसे रहता? घर में भी तो खर्च हो जाता है न?'

'काकी, ज़रा देख लीजिए। थोड़ा भी बचा हो, तो दे दीजिए। कढ़ी में डालना है।'

'बेटी, मैं कह चुकी हूँ कि आटा बचा नहीं है। आखिर मैं झूठ क्यों बोलूँ और इनकार भी क्यों करूँ?'

राधा खाली हाथ लौट गई। जमुना ने अपनी माँ से पूछा : 'माँ ! आटा तो मटकी में रखा है। तुमने इनकार क्यों किया ? क्या तुमको याद नहीं रही ? माँ ! कल तो तुम कह रही थीं कि तुम कभी झूठ बोलती ही नहीं हो।'

'क्या झूठ न बोलूँ तो सच बोला करूँ ? सच बोलने लगूँ, तो अपना यह सारा घर ही खाली हो जाए !'

सुनकर जमुना दंग रह गई ! उसका प्रामाणिक मन व्यावहारिक नीति के इस महान् पाठ को सहसा अपने गले उतार नहीं सका।

: 122 :

अचार

'बिटिया रश्मि, ज़रा जाओ, और अपनी बुआ जी के घर से थोड़ा अचार तो ले आओ !'

रश्मि बुआजी के घर गई। बुआजी ने बड़े प्यार के साथ उसका स्वागत किया। उन्होंने एक-के-बाद एक अचार की कई बरनियाँ खोलीं और बढ़िया-सा अचार दिया। रश्मि अचार लेकर घर लौटी। रश्मि ने, रश्मि की माँ ने और घर के दूसरे सब लोगों ने बड़े चाव से अचार खाया।

दोपहर में माँ की एक सहेली आई। रश्मि की माँ अपनी सहेली से कह रही थीं : 'बहन, हमारी इन बुआजी का तो अजब हाल है। आज उनके घर से थोड़ा अचार मँगवाया, तो पुराना और बिगड़ा हुआ अचार थमा दिया। लगता है कि पिछले साल का सड़ा हुआ अचार दे दिया !'

तीन दिनों के बाद पड़ोस में रहने वाली रमा बहन की बेटी हंसा रश्मि के घर अचार लेने आई। माँ ने रश्मि को एक तरफ बुलाकर कहा : 'सुनो, ये तो रोज़-रोज़ अचार लेने चली आती हैं। हम भला, इनको कब तक देते रहें ? देखो, उस बरनी में पिछले साल का बहुत-सा अचार रखा है। उसी में से थोड़ा निकाल कर दे दो। हंसा तो बड़ा-सा कटोरा लेकर आई है, पर तुम तो उसको थोड़ा ही देना।'

उस दिन दोपहर में रश्मि की माँ की एक और सहेली उनसे मिलने आईं। रश्मि की माँ उनसे कहने लगीं : 'बहन ! हमारे घर का सारा अचार तो पास-पड़ोस से माँगने आने वालों को देने में ही खर्च हो जाता है। हर दिन कोई-न-कोई माँगने आ ही जाता है। आने वालों को 'ना' भी कैसे कहा जाए ? और, उनको-थोड़ा भी कैसे दिया जाए ? अपने घर में तो हम जैसा भी होता है, खा लेते हैं। लेकिन बाहर वालों को तो बढ़िया ही देना चाहिए न ?'

जब रश्मि ने अपनी माँ के मुँह से ये सारी बातें सुनीं, तो वह सहसा सहम उठी।

आज माँ ने अपनी रश्मि को ओछेपन का कैसा अटपटा और अमंगल पाठ पढ़ाया ?

: 123 :

क्या ऐसी कहानी कही जाए ?

एक तीखी चीख के साथ नन्दन जाग उठा।

'माँ ! ओ, माँ ! माँ ! !...'

पिता : 'नन्दन ! नन्दन ! तुमको क्या हुआ है ?'

माँ : 'बेटे नन्दन ! बोलो, क्या बात है ?'

माँ ने नन्दन को छाती से लगा लिया। पिता उसके सिर पर हाथ फेरने लगे।

नन्दन की छाती धड़-धड़ धड़क रही थी। आँखों से टप-टप आँसू टपक रहे थे। ऊँ-ऊँ की गहरी आवाज़ के साथ नन्दन रो रहा था और काँप रहा था।

'हे राम ! इस नन्दन को यह क्या हो गया है ? बेटे नन्दन, तुम थोड़ा पानी पी लो। नन्दन, ओ मेरे नन्दन ! तुम मुझको पहचानते हो या नहीं ?'

नन्दन चौंक-चौंक उठता था। घबराई आँखों से इधर-उधर देख रहा था। सिसकियाँ ले रहा था। बोल भी नहीं पाता था।

'ज़रा दौड़कर जाइए। किसी को बुला लाइए। लगता है कि नन्दन पर कोई भूत चढ़ा है।'

'भई, भूत कैसे चढ़ेगा? हो सकता है कि इसकी नसें तन रही हों, या इसको कहीं कोई दर्द हो रहा हो!'

'बेटे नन्दन! बोलो, क्या बात है? क्या पेट दुख रहा है?'

'पिताजी! दौड़िए, दौड़िए, दौड़िए! वह बाघ मुझको मार डालेगा। ऊँ···ऊँ...ऊँ।'

'नन्दन, बेटे नन्दन! यहाँ तो कोई बाघ है ही नहीं। यह तो अपना घर है।'

'देखो, उस कमरे में वह बाघ है! ···उधर से वह आ रहा है!'

नन्दन अभी सो रहा था। वह नींद में ही डर रहा था।

पिता : 'अब बात मेरी समझ में आई! कल रात मैंने इन सबको शेरों और बाघों की कहानियाँ सुनाई थीं। लगता है, नन्दन को उसी का सपना आया है।'

माँ : 'आप की भी अजब आदत है! बच्चों को डराने वाली ऐसी कहानियाँ आप इनको सुनाते ही क्यों हैं? देखिए, चीखते-चीखते मेरे इस नन्दन का तो गला ही बैठ गया है!'

पिता : 'बेटे नन्दन! यह तो अपना घर है। तुमको तो यह एक सपना आया था।'

छोटी बहन : 'छी-छी, नन्दन! भला, सपने के बाघ से भी कोई डरता है?'

नन्दन : 'नहीं, यह तो जीता-जागता बाघ पींजरे से निकला था।'

माँ : 'नन्दन! तुम तो पागला गए हो! भला, यहाँ बाघ कैसे निकलता?'

सब गहरे सोच में डूब गए। नन्दन अपनी माँ से लिपट गया। पिता विचार करने लगे कि क्या ऐसी कहानियाँ नहीं कहनी चाहिए?

•